साहित्य और विस्थापन: सन्दर्भ कश्मीर

भूषणलाल कौल
डी. लिट्

'शुतरशिकन
लौट आया है
ढाई मन जनेऊ
जलाने हेतु
इतिहास के गरिमामय स्रोतों को
जो इतलम में बना कर
फहरा रहा है
आतंकी, धर्मध्वज
आन, बान और
शान के साथ।'

प्रसिद्ध न्याय विद, समाज सेवक, जाति हितैषी, परोपकारी, जिंदःदिल इंसान प्रोफेसर टी॰एन॰ शाला (निवास त्रिकुटा नगर) को सादर भेंट

[illegible]

२४-६-2002

साहित्य और विस्थापन : सन्दर्भ कश्मीर

भूषणलाल कौल
डी. लिट्

सनमुख प्रकाशन 113 ए/4, आनन्दनगर,
बोडी–जम्मू, पिन 180002

'साहित्य और विस्थापन :सन्दर्भ कश्मीर

लेखक	:	भूषणलाल कौल डी॰लिट्
प्रथम संस्करण	:	2003 ई॰
आवरण चित्र	:	श्री वीर जी सुम्बली
कम्प्यूटर डी॰टी॰पी	:	रिंकू कौल (2595136)
पृष्ठ संख्या	:	167
प्रकाशक	:	सनमुख प्रकाशन, 113 ए/4, आनन्दनगर, बोडी–जम्मू, पिन 180002
मुद्रक	:	एम.के.एनटॅर् प्राइज़िज़, पुलोरा–जम्मू
मूल्य	:	75 रुपये

अपनी दिवंगत पत्नी
श्रीमती मोहिनी प्यारी कौल के नाम
समर्पित

मैं उन हिन्दी और कश्मीरी भाषा के साहित्यकारों का हृदय से आभारी हूँ जिन की रचनाओं के आधार पर मैं ने यह लेखनकार्य पूरा किया है।

मैं ने साहित्य के सत्य को इतिहास के सत्य से अधिक विश्वसनीय, ग्राह्य और श्रेष्ठ माना है।

लेखक

मैं उन समस्त सहयोगी बन्धुओं के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अपने सक्रिय सहयोग से मेरा हौसलः (उत्साह) बढ़ाया।

लेखक

अनुक्रमणिका

अश्रुसिक्त शरूआत

विस्थापन हमारे जीवन की एक त्रासद (Frightening) सच्चाई है। पिछले तेरह वर्षों से यातनामय जीवन जीने के लिये विवश लाखों भारतवासी भारत की सीमाओं के भीतर ही शरणार्थी बनकर जी रहे हैं। हर प्रकार से अधिकार वंचित उपेक्षित जीवन जीना और आस्तित्व को बचाये रखना कोई साधारण बात नहीं है।

आज विस्थापन का भी विस्तार कई प्रकार से हुआ है –

1) वे विस्थापित जिन्होंने सन् 1989–90 ई० में तथा उसके बाद भी कश्मीर घाटी छोड़ कर प्राणरक्षा के हेतु. जम्मू में तथा देश के अन्य प्रदेशों में शरण ली।

2) वे विस्थापित जो ज़िला डोडा (जम्मू) के विभिन्न पहाड़ी क्षेत्रों से आतंकित होकर निकल आये। तथा

3) वे विस्थापित जो जम्मू के सीमावर्ती क्षेत्र से अपने घर द्वार–चलअचल सम्पत्ति – पीछे छोड़ कर सुरक्षित स्थानों में इकट्ठे रहने लगे।

सन् 1989–90 ई० में लगभग चार लाख कश्मीर वासी घाटी छोड़कर ऊधमपुर, जम्मू, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली, उतर प्रदेश के कई शहरों तथा देश के अन्य भागों में रहने के लिये विवश हुए।

एक हसास साहित्यकार की सोच तथा रचना प्रक्रिया पर इतिहास की इस भीषण दुर्घटना का क्या प्रभाव पड़ा, हिन्दी और कश्मीरी भाषा के गद्यलेखकों, नाटककारों तथा कवियों ने विस्थापन पर कब, क्यों और कैसे लेखा, लिखने में कौन सी दुश्वारियाँ पेश आई और समसामयिक यथार्थ के सन्दर्भ में सर्जन की क्या दशा और दिशा रही – यही प्रस्तुत पुस्तक का विवेच्यविषय है।

मैं अपने प्रयास में कहाँ तक सफल हुआ हूँ यह निर्णय विज्ञ पाठकों, मर्मज्ञ साहित्यकारों, कला प्रेमियों, इतिहासज्ञों और विवेकी आलोचकों पर छोड़ देता हूँ। विषय से तनिक हट कर मैं ने डॉ० रत्नलाल 'शान्त' के साहित्यिक व्यक्तित्व का एक सूक्ष्म रेखाचित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जिस की बड़ी ज़रूरत थी।

लगातार 12 वर्ष विस्थापन की यातना सहते सहते मेरी धर्मपत्नी के अदम्य उत्साह को भीतरी घुटन, परिवार विघटन और वापस कश्मीर जाने के झूठे आश्वासन ने काटखाया। ढाई वर्ष जीने के लिये वह संघर्ष करती रही और आख़िर एक दिन थककर चूर होगई, सब कुछ पीछे छोड़ कर सजसँवर कर सैयाँ के घर चल दी।

यही है मेरे लिये विस्थापन का भीषण परिणाम, एक त्रासद अनुभूति, ज़हर आलूदः हक़ीक़त।

15.06.2003

भूषणलाल कौल

प्रस्तावना

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। लगभग तेरह वर्ष पूर्व (1990 ई॰ में) एक ही समुदाय के लाखों सदस्यों को किसी विदेशी ताकत की शह पर आतंकवादियों ने कश्मीर वादी से विस्थापित होने पर मजबूर किया। प्राण–रक्षा के उद्देश्य से वादी से विस्थापित लोगों को एक तो घर से बेघर होने का क्षोभ और दूसरा नए माहौल में तरह–तरह की सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक और मानसिक यातनाएं सहनी पड़ी। इस असह्य मनोव्यथा एवं पीड़ा का प्रतिबिम्ब हमें समसामयिक एवं सहभोगी कश्मीरी विस्थापित साहित्यकारों की लेखनी से मिलता है। इस का वणर्न साहित्य की विभिन्न विधाओं – कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि में हआ है। ये रचनाएं कश्मीरी, हिन्दी, अर्दू और अंग्रज़ी भाषाओं में उपलब्ध है। इस साहित्य का मूल्यांकन बहुत कम हुआ है।

अक्सर विशिष्ट सामयिक हालातों में भावावेश में बहकर जो साहित्य लिखा जाता है, उसका कथ्य हालात के बदलते प्रभावशाली नहीं रहता। इसकी प्रांसगिकता समाप्त होती है। सम्भव है कि विस्थापन के दौरान जो साहित्य लिखा गया है या लिखा जा रहा है, परिस्थितियों के बदलते इसमें कथ्य की शिथिलता का आभास हो जाए, पर ऐतिहासिक–परिप्रेक्ष्य में इसका मूल्य बराबर बना रहेगा।

विस्थापन का गहरा सम्बंध कश्मीर की समृद्ध ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से है। किसी एक समुदाय का कश्मीर से विस्थापन नई घटना नहीं है। विस्थापन पहले भी हुआ है परन्तु लोक–साहित्य को छोड़कर यह किसी परिष्कृत साहित्य का अंग नहीं बन सका। विस्थापन के हतिहास में पहली बार कश्मीर से विस्थापन की गहरी पीड़ा साहित्य–रचना प्रक्रिया से जुड़ गई। इस साहित्य का मूल्य हमेशा ऐतिहासिक परिवेश में देखा और परखा जाएगा न कि समसामयिक घटनाओं के भावात्मक सृजन के रूप में। इस साहित्य का कथ्य सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक

तथ्यों का दस्तावेज़ पेश करता है। यह कथ्य विभित्र सम्बंधित भाषाओं के विषय–वस्तु को प्रसार प्रदान करता है; उसमें नए आयाम जोड़ता है। कथ्य के अतिरिक्त शिल्प के लिहाज़ से भी इस साहित्य को गहरे तौर से परखना ज़रूरी है।

सृजनात्मकता में अनुभव, भावनाएँ प्रबुद्ध सोच, कल्पना और उसकी अभिव्यक्ति महत्वपूर्ण हैं।

अनुभवों में वैयक्तिक एवं दूसरों के अनुभव शामिल हैं। विस्थापन से सम्बंधित साहित्यक सृजन में निजी अनुभवों और भोगे यथार्थ को वाणी मिली है। इस बात को उभारना अनिवार्य है।

समीक्षा के विभिव उद्देश्यों में शामिल है –

साहित्यक रचना की व्याख्या करना, रचना और पाठक के पारस्परिक सम्बंध को निर्धारित करना, रचना को किसी विशिष्ट या निश्चित सैद्धांतिक ढांचे में उतारना आदि। इस तरह समीक्षा मुख्यतयः या तो व्याख्यात्मक होती है या सिद्धोंतपरक।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रो॰ भूषणलाल कौल के छः लेख हिन्दी और कश्मीरी में विस्थापन से सम्बंधित साहित्य की व्याख्यात्यक समीक्षा प्रस्तुत करते हैं। प्रो॰ कौल को साहित्य के पठन और पाठन का गहरा अनुभव है। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने शोध की उच्चतम उपाधि डी॰ लिट्॰ अर्जित की है। उनके लेख समसामयिक विस्थापित साहित्यकारों की हिन्दी एवं कश्मीरी भाषाओं में रचित कविताओं और एक कश्मीरी नाटक की विवेचना प्रस्तुत करते हैं। लेखों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

पहले लेख में कश्मीरी अहिंदी भाषी हिन्दी कवियों की उन कविताओं की विवेचना प्रस्तुत की गई है जिन्होंने विस्थापित समुदाय के आक्रोश, दुख, मानसिक पीड़ा, भीतरी घुटन एवं भयभीत मनोस्थिति को वाणी दी है। इन कवियों में अग्निशेखर, शशिशेखर तोषखानी, रत्नलाल 'शांत', महाराजकृष्ण 'भरत', महाराज कृष्ण 'संतोषी', क्षमा कौल आदि शामिल हैं। प्रो॰ कौल ने इन कवियों की चुनी हुई कविताओं के उदाहरण देते हुए इस विस्थापित समुदाय के भोगे यथार्थ की एक आत्मीय और

भावात्मक विवेचना प्रस्तुत की है।

दूसरे लेख में क्षमा कौल के हिन्दी काव्य–संग्रह 'बादलों में आग' का काव्य–विवेचन पेश किया गया है। कविताओं को आठ वर्गों में विभाजित किया गया है। जिनमें इनकी कविताओं में कश्मीर के ज़ख्मी सौन्दर्य की व्यथा, सांस्कृतिक इतिहास, आंचलिकता, विस्थापित समुदाय की मानसिकता स्पष्टतयः नज़र आती है। क्षमा कौल ने विचार–प्रधान कविताए भी लिखी हैं और कई सृजनात्मक प्रयोग भी किए हैं जिन में मिनी कविता भी शामिल है। प्रो॰ कौल ने उदाहरण देकर कवयित्री की भावाभिव्यक्ति से सम्बंधित विशेषताओं को उभारा है।

तीसरे लेख में रत्नलाल 'शांत' के साहित्य संसार विशेषकर उनकी विस्थापन से सम्बंधित कविताओं का विवेचन है। 'शांत' कश्मीरी और हिन्दी भाषाओं के एक उच्चकोटि के सृजनात्मक लेखक हैं – वे कश्मीरी में कहानियां लिखते हैं और हिन्दी में कविता। सृजनात्मक लेखक के अतिरिक्त वे एक अच्छे समीक्षक और सम्पादक हैं। इस लेख में 'शांत' की बहुपक्षी प्रतिभा का परिचय मिलता है। विस्थापन से सम्बंधित उनकी हिंदी कविताओं का समीक्षात्मक विश्लेषण सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

चौथे अध्याय में अर्जुनदेव 'मजबूर' की कश्मीरी काव्य–कृति 'त्यो'ल' की विवेचना पेश की गई है। इसी नाम की लम्बी कविता में कवि की मनोस्थिति और विस्थापन के क्षोभ को भावात्मक वाणी मिली है। प्रो॰ कौल ने इस कविता को रूपक मानकर इसकी व्याख्या प्रस्तुत की है जिस में बहुत ही नासाज़ परिस्थितियों में जीने के लिए कुछ कामयाब नुस्खे प्रस्तुत किए गए हैं। कवि द्वारा प्रयुक्त संकेतों की समुचित व्याख्या पेश की गई है। कश्मीरी कविताओं के हिन्दी अनुवाद मौलिक पाठ के बहुत करीब हैं।

पांचवे लेख में मोती लाल क्यमू के कश्मीरी नाटक 'नगर वो'दॉस्य' (नगर उदास) का समीक्षात्मक विश्लेषण है। क्यमू की नाटक कला का विवेचन करते हुए समीक्षक प्रस्तुत नाटक में

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में समसामयिक परिस्थितियों की प्रस्तुति को स्पष्ट करते हैं। नाटककार द्वारा इस नाटक में किए गए कई नए प्रयोगों की ओर इशारा किया गया है।

छठे और आखिरी लेख में प्रेमनाथ 'शाद' के कश्मीरी कविता–संग्रह 'सर्व शिहुल' की कविताओं में विस्थापन संबंधित दुख–दर्द और मानसिक पीड़ा का विवरण है। कश्मीरी किवताओं के उदाहारण हिन्दी अनुवाद के साथ दिए गए हैं। अनुवाद सफल हैं और मूल पाठ के बहुत करीब। 'शाद' की कविताओं में खोने की भावना बहुत ही सुन्दर ढंग से सामने लाई गई है।

मैं अपने मित्र प्रो॰ भूषणलाल कौल को बधाई देना चाहूंगा जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक में विस्थापन से सम्बंधित और विस्थापन के दौरान लिखे गए साहित्य की समीक्षात्मक विवेचना बहुत ही आत्मीय ढंग से प्रस्तुत की है। इसमें समीक्षक के वैयक्तिक अनुभव भी शामिल है। प्रो॰ कौल ने विस्थापन से सम्बंधित तथा इसके दौरान लिखे गए साहित्य के कथ्य एवं शिल्प का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। मुझे पूरी आशा है कि प्रस्तुत रचना से दूसरे समालोचक भी प्रेरित होंगे और वे विस्थापन से सम्बन्धित लिखे गए समूचे साहित्य की शोधपरक समीक्षा करेंगे, जिससे साहित्यिक धारा में इस विशिष्ट साहित्य का एक यथोचित स्थान सुनिश्चित होगा।

19 जनवरी, 2003

प्रो॰ ओमकार कौल
भूतपूर्व निदेशक,
भारतीय भाषा संस्थान,
(मानव संसाधन मंत्रालय,
शिक्षा विभाग, भारत सरकार)
मानस गंगोत्तरी, मैसूर
पिन – 570006

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम काल खण्ड में हिन्दी कविता में विस्थापन की पीड़ा

डॉ॰ अग्निशेखर की एक कविता का शीर्षक है –"इस महाविपदा में"। कविता के निम्नलिखित अंश से अपनी बात शुरू करता हूँ :–

–'ओ हिन्दी जगत के अधिकांश कवियो
मेरे मित्रो!
तुम नहीं थे कोई रिलीफ़ कमिश्नर
कि देना पड़ रहा है हमें तुम्हारी कविताओं में
थोड़ी सी शरण पाने के लिए आवेदन–पत्र
एक सम्पूर्ण लुटी–पिटी विस्थापित जाति के घाव
बसना चाहते हैं तुम्हारे संवेदन के घर में कहीं !'[1]

सन् 1990 ई॰ से आज तक अर्थात् पिछले तेरह वर्षों में हिन्दी कविता में एक विशिष्ट काव्य प्रवृत्ति प्रादेशिक सीमाओं के भीतर अपने अस्तित्व का एहसास दिलाती हुई तथा एक ऐतिहासिक सत्य को मुखरित करती हुई पनप रही है। भले ही टेलिविजन चैनलों द्वारा खरीदे हए अथवा महानगरों से जुड़े रचनाकारों के क़लम की स्याही इस प्रवृत्ति को राष्ट्रीय स्तर पर मुखरित करने में खर्च न हुई हो परन्तु प्रादेशिक स्तर पर प्रबुद्ध हिन्दी कवि मानस विह्वलित हो उठा और उस ने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सात लाख देशवासियों की मनोव्यथा को वाणी प्रदान क़रते हुए महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है।

अपने ही देश में रफ़्यूजी बन कर अथवा विस्थापित होकर जीवन जीने की पीड़ा सहते हुए ये सात लाख भारतीय जो सदियों से अपनी बौद्धिक सम्पन्नता के लिये विश्व प्रसिद्ध रहे हैं तथा जो शताब्दियों से बुतशिकनी–चक्की में पिसते रहे – आज सैंकड़ों नये अनुभवों के साथ जीवन जीने के उपक्रम में लगे हुए है। कश्मीर के इतिहास में इस प्रकार के विस्थापन के कई साख्य उपलब्ध हैं लेकिन भारतीय गणराज्य के सन्दर्भ में जब हम

1–'कोशुर समाचार'–कश्मीर समिति, दिल्ली का मासिक प्रकाशन–नवम्बर–1996 ई॰–पृ॰–84

इतिहास की इस ज़हरीली सचाई को आँकने का प्रयत्न करते हैं तो स्वयमेव कई प्रश्नचिह्न एक साथ मन मस्तिष्क को कचोट देते हैं।

विस्थपित बुद्धिजीवी वर्ग पर इस भीषण दुर्घटना का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। नया सोच पनपने लगा। भावनाओं का अथाह सागर उफ़न उठा। आक्रोश, विद्रोह, मानसिक पीड़ा, संत्रास, पराजय बोध, भीतरी टूटन, मोहभंग जाने कितनी मनः स्थितियाँ एक साथ सर्जनात्मक कलाकार को तड़फड़ाने लगी। कैनवास के फटे टेंट में परिवार के कई सदस्यों के साथ पारिवारिक़ एवं दाम्पंत्य जीवन का निर्वाह, रोज़गार की तलाश में भटकाव, वेतन पाने की विवशता और लगातार महीनों इन्तिज़ार, अपने खोये हुए विरसे पर मातम, परिजनों के छूटजाने का अफ़सोस, परिवारों के विघटन की पीड़ा, कहीं लू का प्रकोप, कहीं बिच्छू डंक तो कहीं सर्पदंश, माल के कर्मचारियों की खुली लूट, एक हज़ार से अधिक जाति बन्धुओं की नृशंस हत्याओं का ग़म, प्रकृति का प्रकोप जाने कितनी विकट स्थितियों से गुज़रने की विवशता ले कर भारत–राष्ट्र का एक ज़माने में सर्वसम्पन्न पठित समाज अकस्मात् विनाश के भँवर में हिचकोले रवाता हुआ दिखाई दिया। इन समस्त विकट स्थितियों को झेलते हुए उसे अवश्य सान्त्वना मिली उन देशबन्धुओं से जिन्होंने अपने घरों के द्वार खोल कर इस विस्थापित, लुटेपिटे <u>हिन्दुस्तानी</u> का स्वागत किया। 20वीं शताब्दी के अन्तिम काल खण्ड में घटित इतिहास की इस दुर्घटना ने कविता में एक नई काव्य प्रवृत्ति को जन्म दिया जिसे यदि विस्थापन की कविता कहा जाये तो उचित होगा।

स्वर्गीय प्रोफ़ेसर पृथ्वीनाथ पुष्प, डॉ॰ रत्नलाल शान्त, डॉ॰ शशिशेखर तोषख़ानी, डॉ॰ अग्निशेखर, डॉ॰ श्रीमती क्षमा कौल, महाराज कृष्ण सन्तोषी, पृथ्वी नाथ 'मधुप', प्यारे हताश, डॉ॰ महाराज कृष्ण 'भरत', शम्भू नाथ भट्ट 'हलीम', बाल कृष्ण 'सन्यासी', त्रिलोकी नाथ 'कुन्दन', श्रीमती चन्द्र कान्ता, श्रीमती फूला कौल (उँफा), श्रीमती सुनीता रैणा, मीनाक्षी कौल डेम्बी, राज दुलारी मनवटी, डॉ॰ कौशल्या लाहौरी, गोपी राज़दान, पंडित पांचाल, माखन लाल 'उदय' तथा प्रोफ़ेसर वीर विश्वेश्वर आदि प्रतिभावान अहिन्दी भाषा भाषी कवियों ने इस त्रासदी से प्रेरित हो कर हिन्दी कविता लिखी। कश्मीर के स्वर्णिम भूत और विपद ग्रस्त वर्तमान पर अपनी तीखी और चुभती हुई काव्यात्मक प्रतिक्रियाँ व्यक्त की।

यथार्थ की तपिश से जब अरमान (इच्छा, कामना) झुलस जाते हैं तो वे अभिव्यक्ति के किसी विशेष साधन के मुहताज नहीं रहते। हिन्दी के साथ साथ कश्मीरी भाषा के क़लमकार भी इस आग की तपिश से कराह उठे। इन में सर्वश्री स्वर्गीय मोतीलाल साक़ी, स्वर्गीय चमन लाल 'चमन', स्वर्गीय ग़ुलाम रसूल सन्तोष, फ़ारूक नाज़की, मोहन लाल आश, तेज रावल, पृथ्वी नाथ कौल 'सायिल', अर्जुनदेव 'मजबूर', प्यारे हताश, प्रेमनाथ शाद, मक्खन लाल कंवल, रत्न लाल जौहर, जवाहर लाल सरूर, रघुनाथ कस्तूर, काशी नाथ बागवान, जगन्नाथ सागर आदि उल्लेखनीय हैं।

राजनीतिक कुचक्रों एवं गोलमाल घोटालों से जर्जरित भारत राष्ट्र के सात लाख भारत वासियों की मनोव्यथा से आप्लावित कई काव्य–संग्रह पिछले तेरह वर्षों में प्रकाशित हुए हैं।

1. हिन्दी अकादमी दिल्ली के सहयोग से सन् 1995 ई॰ में महाराज कृष्णा 'भरत' का काव्य संग्रह 'फिरन में छिपाए तिंरगा' 'अनिल प्रकाशन', दिल्ली से प्रकाशित हुआ। 'भरत' नगरोटा जम्मू के विस्थापित कैम्प में स्वयं कई वर्ष अप्रत्याशित यथार्थ से निरन्तर जूझते रहे। नौकरी की तलाश में दफ़तरों/कारख़ानों/विद्यालयों के द्वार खटखटाते, अन्त में 'पाचंजन्य' साप्ताहिक से जुड़ गए। इस संग्रह में कवि की 71 कविताएँ संगृहीत हैं। सन् 1997 ई॰ में अहिन्दी भाषी हिन्दी कवि के रूप में भारत के राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित महाराज कृष्ण 'भरत' के इस संग्रह में समस्त कविताएँ चार उपशीर्षकों –

1) 'तम्बुओं के भीतर'
2) 'मेरा रोम रोम सिहर उठता हैं'
3) 'मेरा अलग विधान है' तथा
4) 'भोर की पहली किरण'

में विभाजित हैं। अन्तिम उपशीर्षक कवि मानस की आस्था और आशावादी दृष्टि का द्योतक है। क्यों न हो ! आख़िर उम्मीद का दामन तो किसी ने नहीं छोड़ा है।

2. अपनी धरती से निर्वासित श्री महाराज कृष्ण "सन्तोषी" के तीन काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं –

1) 'इस बार शायद'

2) 'बर्फ़ पर नंगे पाँव' तथा
3) "यह समय कविता का नहीं'

"सन्तोषी" का दूसरा काव्य संग्रह 'बर्फ़ पर नंगे पाँव' पल्लवी प्रकाशन दिल्ली से सन् 1992 ई॰ में प्रकाशित हुआ। 'कश्मीर की स्मृतियों से जुड़ी और जीवन विसंगतियों से अनुप्राणित 58 कविताएँ संग्रह में संगृहीत हैं।

'यह समय कविता का नहीं' निर्वासन में सन्तोषी की कविताओं का महत्त्वपूर्ण संग्रह है जो 1996 ई॰ में "शारदा पीठ प्रकाशन" लक्ष्मीनगर, दिल्ली–92 से प्रकाशित हुआ। कवि ने इस संग्रह को अपने गाँव के नाम समर्पित किया है। 54 कविताओं के इस संग्रह में युवा कवि को सर्जना की प्रेरणा निर्वासन में विकट स्थितियों का सामना करते ही मिली है। यह तो भोगे हुए यथार्थ की सहज अभिव्यक्ति है। स्वप्नों के खण्ड़–खण्ड़ बिखर जाने पर भी उन की कविताओं में उबलता आक्रोश कला के साँचे में बड़ी खूबसूरती के साथ ढल गया है। हाँ, वे सर्जन के प्रति सचेत होने के साथ साथ आस्थवान भी हैं। उन्हीं के शब्दों में 'मानवीय जीवन की गरिमा में गहन आस्था'[1] संग्रह का आवरण पृष्ठ रक्तवर्ण का है। क्यों न हो, आज जन्मभूमि जो लहूलुहान है और इसी रक्तवर्ण की स्याही से उन्होंने आवरण पृष्ठ पर ही अपने जीवन से जुड़े यथार्थ का परिचय बोध कराया है :–

'इस उजाड़ में
चिरागों की कांपती हुई लौ
देख कर
कितने ख़ुश हो रहे होंगे
सांप और बिच्छू
दंश के इतने निकट
होते हुए भी
हम ने लिखी अनगिनत कविताएँ
सुने गीत
पहले से भी अधिक
लगाये क़हक़हे

1–'यह समय कविता नहीं'– संतोषी – आवरण पृष्ठ

तुम्बुओं में होते हुए भी
हम ने टूटने से बचाया
अपना क़द।'[1]

3. सन् 1996 ई॰ मे डॉ॰ अग्निशेखर का काव्य संग्रह 'मुझ से छीन ली गई मेरी नदी' शारदा पीठ प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ। सन् 1990 ई॰ से ही अग्निशेखर विस्थापित समाज के लिये एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाह रहे हैं। टूटी और बिखरी हुई शृंखलाओं को पुनः जोड़ कर अग्निशेखर ने दिग्भ्रमित समाज को एक नया नेतृत्व प्रदान दिया। पिछले तेरह वर्षों से विस्थापित समाज के लिये वे लौह–पुरूष की भूमिका निबाह रहे हैं। कश्मीरी विस्थापित समाज की पीड़ा को विश्व मंच पर लाने का श्रेय उन्हें ही है। यहाँ उन की चर्चा प्रकाशित काव्य संग्रह 'मुझ से छीन ली गई मेरी नदी' के सन्दर्भ में ही की जाये गी।

कविता–संग्रह का आवरण पृष्ठ काले रंग का है – तमसान्धकार का प्रतीक, घटाओं से घिरे जीवन का प्रतीक। संग्रह के मुख–पृष्ठ पर प्रकाशित है –'निर्वासन में अग्निशेखर की कविताएँ'। इस संग्रह में कुल 69 कविताएँ हैं। कवि लेखकीय स्वायत्तता को बरकरार रखने के लिये नैतिक साहस को नितान्त आवश्यक मानते हैं।[2] संग्रह की प्रथम कविता 'तड़प' कवि की जीवन–दृष्टि अथवा लक्ष्य की ओर स्पष्ट संकेत करती है।

4. नीहार प्रकाशन जम्मू से सन् 1997 ई॰ में प्रोफ़ेसर (डॉ॰) रत्नलाल 'शान्त' का बहुचर्चित कविता संग्रह 'कविता अभी भी' प्रकाशित हुआ। सन् 1938 ई॰ में जन्मे 'शान्त' जी कश्मीर के एक जाने माने रचनाकार हैं। एक सशक्त गद्य लेखक, कुशल शोधकर्ता एवं सम्पादक, समर्थ अनुवादक एवं चर्चित अध्यापक के रूप में उन का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। 'शान्त' जी दो भाषाओं हिन्दी एवं कश्मीरी में समान रूप से लिखते चले आ रहे हैं। 'शान्त' जी कवि हैं – हिन्दी के कवि, सच्चे अर्थों में कवि। कई दशाब्दियों की निरन्तर साधना के बाद आज उनका सर्जनहार कवि विकास के

1– 'यह समय कविता नहीं'– संतोषी – आवरण पृष्ठ
2– अनिश्चितता और सम्भावनाओं के मौजूदा दौर में हम नैतिक साहस को कम न होने दे तो हमारी लेखकीय स्वायत्तता भी बरकरार रह सके गी।'
'मुझ से छीन ली गयी मेरी नदी'– अग्निशेखर – आवरण पृष्ठ

विभिन्न मंज़िलों की सूचना देता हुआ 'कविता अभी भी' काव्य संकलन में निखर उठा है। पिछले तीन दशकों के अनुभव से जुड़ी 96 कविताएँ प्रस्तुत संग्रह में संगृहीत हैं जिन में केवल 18 कवितायें विस्थापन की पीड़ा से प्रेरित होकर लिखी गई हैं।

यहाँ इस बात को स्पष्ट करना आवश्यक है कि शान्त जी को कश्मीरी और हिन्दी के साथ साथ अंग्रेज़ी एवं संस्कृत भाषाओं की भी गहन जानकारी है। पिछली दो शताब्दियों में देश विदोश में चल रहे विभिन्न काव्य आन्दोलनों एवं चिन्तन– पद्धतियों की उन्हें गहरी पहचान है।

साठोत्तरी युग की हिन्दी कविता के विभिन्न मोड़ों से गुज़र कर वे निजी अनुभवों के अनेकों मौक्तिक समेटने में लीन थे कि पलायन के भूत ने द्वार पर दस्तक दी और 'शान्त' जी इन्दिरा नगर (श्रीनगर) से सुभाष नगर (जम्मू) आ पहुँचे। अत्यन्त विकट परिस्थितियों में भी वे निरन्तर सर्जन में लीन रहे बल्कि अधिक सक्रिय हो उठे जो नित हो रहे परस्पर विरोधी अनुभवों की टकराहट में स्वाभाविक था।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सम्मानित "शान्त" जी का मानना है कि :–

'कविता अभी भी मेरा अंतस से संवाद का मुख्य माध्यम है। बिना किसी सम्भ्रम के।'[1]

वे आज के युगीन सत्य से भी अपरिचित नहीं हैं। लिखते है :–

'रुचिहीनता बढ़ रही है और इस कारण लेखक और भावक का सम्बन्ध क्षीण होता जा रहा है। स्थिति इतनी त्रासद होरही है कि रचित शब्द अब वड़ी मुश्किल से रचयिता को बचाए रख सके गा।'[2]

कठिन आत्म निर्वासन में जीते हुए भी वे भविष्य के प्रति आशावान हैं। लिखते हैं :–

–'पर स्थिति सदा ऐसी ही बनी रहे, ऐसा सोचना भी ठीक नहीं। इसे संक्रान्ति काल ही माना जा सकता है। ....नई प्रस्तुति में आदमी की पहचान तथा अनिवार्य प्रासंगिकता फिर स्थापित करे गी कविता।'[3]

1– 'कविता अभी भी' – रत्नलाल शान्त – आश्वासन–पृ.7
2– 'कविता अभी भी – रत्नलाल शान्त – आश्वासन–पृ.7
3– वही

प्रस्तुत संग्रह में प्रत्येक रचना के साथ लेखन तिथि भी दी गई है जो कविता का सही मूल्यांकन करने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है।

5. सन् 1996 ई॰ में 'हमारा अपना कश्मीर' काव्यसंकलन सृजनपीठ, हिन्दी विभाग (लखनक विश्वविद्यलय) द्वारा प्रकाशित हुआ जिस में 27 गैर कश्मीरी कवियों की 27 कविताएँ संकलित हैं। इस संकलन की सम्पादिका हैं – डॉ॰ भुवनेश्वरी त्रिपाठी। इस संकलन की रचनाएँ देश प्रेम एंव राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हैं लेकिन विस्थापन से जुड़ी वस्तुस्थिति का यथार्थ बोध बहुत कम देखने को मिलता है। वरिष्ठ कवि डॉ॰ जगदीश गुप्त की 'बुझते अंगारे' इस संग्रह की एक प्रमुख रचना है। कवि लिखते है :–

'कांगडी के भीतर
अंगारे बुझ गए हैं।
राख ही राख
शायद रह गई है।'

अपने ही देश में/विस्थापित लोगों की/मर्म व्यथा कौन कहे।'[1]
आज तक लिखी गई 'विस्थापन की कविता' का अध्ययन करने के पश्चात् कई तथ्य उभर कर सामने आते हैं :–

(i) यह कविता कवियों के निजी अनुभूत सत्य पर आधारित है। माननीय अटल बिहारी वाजपेयी जी ने 'भरत' के काव्य संग्रह 'फिरन में छिपाए तिरंगा' का मुखपृष्ठ सुशोभित करते हुए लिखा है :–

'उनका अनतंनाग में घर आतंकवादियों ने जला दिया। पूरा परिवार सदियों पुराना, अपने पुरखों का शहर, घर बार छोड़ कर जम्मू के विस्थापित शिविर में रहने के लिए विवश हुआ। उन के हृदय में लहरा रहा देशभक्ति का तिरंगा आहत हुआ'[2]।

'फिरन में छिपा तिरंगा' इस संग्रह की एक सशक्त रचना है। अनुभूत सत्य का ऐतिहासिक दस्तावेज़ :–

'मैं,
आज़ाद भारत का

1– 'कोशुर समाचार–नवम्बर 1996 ई॰–पृ॰ 84
2– 'फिरन में छिपाए तिरंगा'–महाराज कृष्ण 'भरत'–शुभाशीष

गुलाम शरणार्थी
विवश हूँ –
रिलीफ कमिश्नर की
गुलामी के लिए
:
तीन साल पहले
मैं, रात के अन्धेरे में
भागा था
फिरन में
छिपाए तिरंगे को
और
आज 'आज़ादी'
मेरे लिए
तीन अक्षरों का
एक जमावड़ा है।'[1]

(ii) विस्थापन की कविता का दूसरा आकर्षण इस के गहन इतिहास बोध में निहित है। कवि अपने भूत के साथ मज़बूती के साथ जुड़ा है। उसे अपनी सांस्कृतिक विरासत पर गर्व है और आज भी अपने पूर्वजों की याद के सहारे वह अपने उजड़े हुए वर्तमान को सजाने का सफल/असफल प्रयास कर रहा है। कश्यपमर का भव्य इतिहास, शारदा पीठ का स्वर्णिम आतीत, अभिनव गुप्त का 'तंत्रालोक', क्षेमेन्द्र का 'दशावतार चरित' मङ्खक (12वीं शती) का 'श्रीकंठ चरित' कल्हण की राजतरंगिणी', आनन्दवर्धन का 'ध्वन्यालोक' लल्लेश्वरी के 'वाख' (वाक्) और सहज़ानन्द (नुन्दऋषि) के 'श्रुख' (श्लोक), परमानन्द के भक्ति गीत और प्रकाश भट्ट का रामकाव्य, दीनानाथ नादिम के राष्ट्रीय गीत और मास्टर ज़िन्द कौल की आध्यात्मिक चिन्तन पर आधृत रचनाएँ, बंसी पारिमू और ग़ुलाम रसूल संतोष की चित्र कला, सोमनाथ साधू और पुष्कर भान की अदाकारी, प्रोफ़ेसर पृथ्वीनाथ पुष्प, एंव प्रोफ़ेसर जिया लाल कौल का शोधकार्य, मोती लाल साक़ी, अर्जुनदेव मजबूर, पृथ्वी नाथ कौल सायिल एवं मोहन लाल आश का रचना

1– 'फिरन में छिपाए तिरंगा' – 'भरत' – पृ॰– 30–31

कौशल – यही तो उस की सांस्कृतिक विरासत है।

'संतोषी' अपनी परम्परा से जुड़े हुए हैं। पाँच हज़ार वर्ष पुरानी परम्परा की अगली कड़ी के रूप में अपना उनतालीसवाँ जन्म दिन मनाते हुए कवि लिखते हैं :–

–'आज मैं खुश हूँ अपने जन्म दिन पर
यह जानते हुए भी कि
मां के बनाए हुए पीले चावलों से
अलग नहीं है
मेरी व्यथा का रंग
आज मैं खुश हूँ कि उनतालीस नहीं
मेरी आयु पाँच हज़ार वर्ष पार कर चुकी है
मैं खुश हूँ कि लावारिस नहीं हूँ मैं
इतिहास मेरा पिता है।'[1]

आज जिस त्रासद घटनाचक्र से विस्थापित कश्मीरी गुज़र रहा है–इतिहास गवाह है कि कई बार वह इन तूफ़ानों का सामना करने के लिए विवश हुआ है। सदा उसे सर्पमुख पर पटक दिया गया है फिर भी जीवन जीने का अदम्य उत्साह उस के भीतर कम नहीं हुआ 'संतोषी' लिखते हैं :–

–'जीवन के इस सांप–सीढी खेल में
हमें समय ने सदा ही
सर्पमुख पर दे फेंका है
फिर भी हमारे उत्साह की
कोई इति नहीं
सीढ़ियाँ न सही
पर हमें गर्व है
कि हमारे कदम
काल के फन पर पड़ते हैं।'[2]

1– 'यह समय कविता का नहीं'–'संतोषी'–पृ॰– 9 (कविता शीर्षक–'निर्वासन में जन्मदिन')
2–'यह समय कविता का नहीं'–'संतोषी'–पृ॰ 12 (कविता शीर्षक–'सर्पमुख)

सर्जन की दृष्टि से 'घर की पुकार' संतोषी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। एक मँजे हुए कवि की ख़ालिस काव्याभिव्यक्ति जिस में सब कुछ एक साथ देखने को मिलता है – कवि का इतिहास बोध, सांस्कृातक पहचान, पूर्वजों के साथ जुड़ने की ललक, वर्तमान दुर्दशा, ज़िन्दा लाश के समान जीवन जीने की विवशता तथा अभिव्यक्ति की ताज़गी।

लल्लेश्वरी के इस 'वाख' की पृष्ठभूमि में 'संतोषी' घर लौट जाने की तमन्ना पूरी संजीदगी के साथ व्यक्त करते हैं लेकिन काल की सीमाओं में बन्धा कवि – हृदय यथार्थ की आँच से झुलस जाता है।

"आमि पनुँ सोदरस नावि छस लमान
कति बोज़ि दय म्योन म्यति दिथि तार
आम्यन टाक्यन पोन्य ज़न शमान
ज़ू छुम ब्रमान गरुँ गछुँ हा।"[1]
(कच्चे धागे के सहारे खेती हूँ नाव भवसागर में
काश ! सुन लेते ईश बात मेरी, पार उतरती नाव
हूँ तो कच्ची मिट्टी का बरतन रिसता है जल निरन्तर
प्राण व्याकुल हैं घर जाने के हेतु)।

सन्तोषी इसी 'लल–वाख' की पृष्ठभूमि में अपनी बात इस प्रकार से कहते है :–

–'तुम्हारे पास
अपना कच्चा धागा तो था
माँ लल्लेश्वरी !
मेरे पास
जले हुए कपास की स्मृतियाँ हैं।
हाँ, सुन रहा हूँ मैं भी
घर की पुकार
मगर क्या करूँ
नाव खींचने के लिए
अभी कितना कम पड़ रहा है
मेरा धागा ![2]

1–'ललद्यद'–प्रो॰ जिया लाल कौल–जम्मू–कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन–सन् 1975ई॰–पृ॰–54
2–'यह समय कविता का नहीं'–संतोषी–पृ॰ 49 (कविता शीर्षक : 'घर की पुकार')

(iii) विस्थापन की कविता में तीसरा आकर्षण विस्थापित जीवन की विसंगतियों से उत्पन्न क्षोभ, निराशा, आक्रोश, मृत्युबोध, पराजय– बोध, मानसिक कुंठा, स्वप्न भंग से उत्पन्न आक्रोश की चुटीली अभिव्यक्ति में निहित है। समाज इस प्रकार के अकस्मात् कायापलट कर देने वाली वस्तुस्थिति के लिये कदापि तैयार नहीं था। 19 जनवरी 1990 ई० मस्जिदों के माइक्रोफोनों पर जब रात के दस बजे एक साथ सारे शहर में ड्रम पीटने की भीषण ध्वनि दिशाओं में गूँज उठी तो सारा वातावरण न केवल भयावह अपितु विश्वासघाती बन कर ज़हरीले नाग की तरह फुफकार उठा। अग्निशेखर की एक कविता का शीर्षक है –'19 जनवरी 1990 की रात'। कविता में उन्हों ने अकस्मात् क़हर ढाती उस रात का भयोत्पादक स्मृति बिम्ब इस प्राकर अंकित किया है :–

–'तहखाने में कोयले की बोरियों के पीछे
छिपाई गयीं मेरी बहनें
पिता बिजली बुझा कर घूम रहे हैं
कमरे में यों ही
रोने बिलखने लगे हैं मुहल्ले के बच्चे
होंठ और किवाड़
दोनों हैं बन्द
बाहर कोई भी निकले
शब्द या आादमी–
दोनों को ख़तरा है।'[1]

सच है कि इतिहास के सत्य से कवि का सत्य कहीं अधिक शक्तिशाली, शाश्वत एवं विश्वसनीय होता है। अग्निशेखर इसे बड़ा और महान मानते हैं।[2]

(iv) अपनी मिट्टी की भीनी भीनी सुगन्ध से विस्थापन की कविता महक रही है। यह इस कविता का चौथा आकर्षण है। कवि अपनी माटी के मोह को त्याग नहीं सका है और त्यागना भी नहीं चाहता। आख़िर मातृभूमि तो जननी जन्मभूमि है, मात्र भूमि नहीं। उसे अथाह प्यार है कश्यपमर के कण–कण से क्योंकि उस की माटी में हमारे पूर्वजों के अस्थि अवशेष मिले

1–'मुझ से छीन ली गई मेरी नदी'–अग्निशेखर–पृ० 79 (कविता शीर्षक : 19 जनवरी 1990ई० की रात)
2– 'मुझ से छीन ली गयी मेरी नदी'–अग्निशेखर–आवरण पृष्ठ (पूर्वकथन से)

हैं यही कारण है कि अग्निशेखर अपनी ज़मीन के स्पर्श के लिये तरस रहा है। लिखते हैं :–

–'अरे, मेरा करो अपहरण
ले जाओ मुझे अपने यातना–शिविर में
:
ज़िन्दा जलाओ, काटो
या दफ़न करो कहीं मुझे
:
मैं तरस गया हूँ
अपनी ज़मीन के स्पर्श के लिये।'[1]

उमड़ते घुमड़ते बादलों के बीच मातृभूमि की स्मृतियाँ रह रह कर मानस पटल पर कौन्ध उठती हैं। यह वास्तव में अभिव्यक्ति की स्वाभाविक प्रक्रिया है। सम्भवतः भारत के इतिहास में यह पहला अवसर है कि देशवासी अपने ही देश के भीतर शरणार्थी बन कर अथवा बेघर होकर जीवन जीने के लिये विवश हैं। अपने आप को हिन्दुस्तानी कहने की कीमत चुका रहे हैं। ये लोग सब कुछ पीछे छोड़ आये हैं। चल–अचल सम्पत्ति के छूट जाने का इन्हें दुख नहीं, दुख है केवल इस बात का कि माँ शारिका की थापना पीछे छूट गई, तुलामुला का पवित्र तीर्थ, सहज़ानन्द का च्रारिशरीफ़, भोलेनाथ की गुफ़ा, मार्तण्ड का सूर्य मन्दिर, शारदा में स्थित शारदा पीठ जाने कितनी स्मृतियाँ जन्मभूमि के साथ जुड़ी हैं और आज रह रह कर हमें अधीर कर देती हैं तिस पर बच्चे जब बार–बार घर लौट चलने की ज़िद पकड़ लेते हैं तो अपने आप पर नियंत्रण कर पाना असम्भव हो जाता है :–

–'उड़ जाती हैं टैंटो की रस्सियों से
एक साथ बीसियों चिड़ियाँ
सूनी हो जाती है मेरी बिटिया
लुप्त हो जाती है उन की चहक
फिर अनायास पूछती है –
पापा, हम कब जायें गे घर ?'[2]

1– 'मुझ से छीन ली गयी मेरी नदी'–अग्निशेखर–आवरण –पृ॰–9 (कविता शीर्षक : तड़प)
2– 'मुझ से छीन ली गयी मेरी नदी'–अग्निशेखर–पृ॰ 50 (कविता शीर्षक : कैम्प में चिड़ियाँ)

यही कारण है कि कवि स्मृति विहीन होकर जीने की तमन्ना करके रह जाता है :–

–'एक एक बरस दूर सरक रहे हैं मेरे घाव
और बिना आवाज़ किये
काट रही है चक्कर उन के इर्द गिर्द मेरी स्मृतियाँ
:
मैं दूर जाना चाहता हूँ कहीं
स्मृति विहीन हो कर
पानी में बहती किसी शहतीर सा ।'[1]

'शान्त' जी अपनी माटी से जुड़े हैं गहन रूप में। विस्थापन की यातना झेलते हुए भी वे अपनी सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। चाहे वह महाशिवरात्रि का पावन पर्व हो अथवा कृष्ण जन्माष्टमी, माँ शरिका का जन्म दिवस हो अथवा ज्येष्ठ अष्टमी, गौरी तृतीया (माघशुक्लपक्ष) हो अथवा 'ज़ंगत्रय' (चैत्र शुक्ल पक्ष)। विस्थापित आज भी अपनी परम्परा से जुड़े रहने के लिये कृतसंकल्प हैं। आखिर यही तो इन की पहचान है। ये वितस्ता से अपना रिश्ता तोड़ नहीं सकते। 'महादेव' और 'हरमुख' की चोटियों के साथ इन का हज़ारों वर्षों का सम्बन्ध रहा है। इंच इंच सरकते ग्लेशियर और रंग बदलते चिनार आज भी इन के सपनों की दुनिया को सजाते सँवारते हैं। "शान्त" जी का कलाकार कवि वस्तुस्थिति से अवगत कराते हुए लिखते हैं :–

–'ऐसा नहीं कि यह ज़मीन
बहुत तपती है और
मैं तलुए झुलस जाने के डर से
इस पर पैर रख नहीं रहा
:
ऐसा है बन्धु, कि मेरे पैर वितस्ता की कीच ने
पकड़ रखे हैं
और हड़बड़ाहट में
मैं उन्हें पीछे छोड़ आया हूँ

1– 'मुझ से छीन ली गयी मेरी नदी'–अग्निशेखर–पृ॰ 55 (कविता शीर्षक : यहाँ)

मेरा माथा अभी भी
यहाँ के ताप से पिघल नहीं रहा,
यह सदियों से
'महादेव' और 'हरमुख' की मेघ ढकी चोटियों से
ठण्डे धीमे संवाद में
लीन है।'[1]

(v) व्यंग्य की तीखी – प्रखर अभिव्यक्ति विस्थापन की कविता का पाँचवाँ आकर्षण है। इन व्यंग्य रचनाओं में वस्तुस्थिति का यथार्थ बोध कराने के हेतु कहीं हल्की चोट की गयी है तो कहीं तीखा प्रहार। कहीं व्यंग्योक्ति भीतरी कुढ़न को मुखर कर देती है तो कहीं नश्तर की तेज़ धार बन कर हृदय को चीर देती है, कहीं नेताओं के बौनेपन का मज़ाक उड़ाती है तो कहीं हमारी निजी कमज़ोयियों को रेखांकित करदेती है। राजनीति के गुर्गों पर कसा गया व्यंग्य 'संतोषी' के ईमानदार व्यक्तित्व की पहचान है। सुखराम का दुखमोचन महल आख़िर किसे अपनी ओर आकर्षित नहीं करता। इस देश की मुर्गी एक दिन में 20 किलो दाना चट कर देती है तथा एक दिन अकस्मात् वबा (महामारी) का शिकार हो जाती है। वाह रे भोले नाथ ! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है।

'एक बूढे नागरिक का बयान' शीर्षक कविता में "सन्तोषी" स्वतंत्र भारत के परतंत्र नागरिक की विवशता को व्यंग्योक्ति के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं :–

–'मेरे इस भूगोल में
कितनी सुन्दर जगहें हैं
जिन्हें देखना
मैं ने हमेशा स्थगित किया
आखिर
मैं कर भी क्या सकता था
उन्हों ने मुझे
केवल इतना चलना सिखा दिया है
कि मतदान केन्द्र तक पहुँच सकूँ।'[2]

1– 'कविता अभी भी'–रत्नलाल शांत–पृ॰–142–143 (कविता शीर्षक : अवकाश)
2– 'यह समय कविता का नहीं'–सन्तोषी–पृ॰–30 (कविता शीर्षक : एक बूढे नागरिक का बयान)

तम्बू और गोलमाल–दोनों एक इसरे के पर्याय हैं। विस्थपितों के पुनर्वास को ले कर जो घपले बाज़ी (Bunglings) हुई उस का जीवित गवाह या सशक्त प्रतीक तम्बू है जिस में बारिश की चन्द बून्दों को भी सहन करने की शक्ति नही। अग्निशेखर की एक लघु कविता 'बारिश में पतंग' एक साथ हँसा भी देती है और रूला भी देती है। बड़ा ज़ोरदार व्यंग्य है :–

'इस बारिश में
कैम्प के पिछवाड़े
मुर्दा भैंस के कंकाल में छिपा कर
रख आता है एक बच्चा अपनी पतंग
तम्बू से उठ गया है
उस का विश्वास।'[1]

'बड़े ढीठ हो कश्मीर' "शान्त" जी की एक व्यंग्यरचना है जिस में उन्हों ने आपने भीतरी आक्रोश को अथवा भीतरी कसक को मूर्त अभिव्यक्ति प्रदान की। कविता कई ऐतिहासिक तथ्यों की ओर संकेत करती हुई 'स्याही में ढलने को कुलबुलाती बौखलाहट' पर समाप्त होती है :–

'बड़े ढीठ हो, कश्मीर
ठीक भूकम्प के समय
लोहे और आग का खेल देखने
कहाँ छिप गये ?
जानते हो
तुम्हारी उस बच्ची का हाथ
बहुत देर हवा पकड़ने की कोशिश करता रहा
जिस की उंगली छोड़ कर तुम हवा हो गए।
सुनो, ताकि याद रहे
हवा की ही तरह कोई लोहा भांजता आया
और उसे
मांग से जांघ तक काट गया।'[2]

1– 'मुझ से छीन ली गई मेरी नदी'–अग्निशेखर–पृ॰–44 (कविता शीर्षक : 'बारिश में पतंग')
2– 'कविता अभी भी'–रत्नलाल शांत–पृ॰ 146–147 (कविता शीर्षक : बड़े ढीठ हो कश्मीर)

जून सन् 1997 ई॰ में भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत हिन्दी की कवयित्री एवं गद्य लेखिका डॉ॰ क्षमा कौल[1] कई प्रकार से विस्थापन की यातना बराबर झेल रही है। उन की कविताओं में विस्थापन से उभरी मनः स्थिति के नाना बिम्ब सशक्त रूप में व्यक्त हुए हैं। भीतरी आक्रोश को नियंत्रण में रखना जब असम्भव हो जाता है तो हसास रचनाकार उसे हास्य और व्यंग्य का जामा पहना कर तथा शिष्टता की सीमाओं में बान्ध कर व्यक्त करता है। विस्थापन से कुछ वर्ष पूर्व अनन्तनाग की विनाशलीला के समय खतरे की घंटी बजी थी लेकिन हम थे कि सुन कर भी अनसुनी कर दी। 'वे खा रहे हैं मलाई' शीर्षक कविता में कवयित्री मज़ाक में कहे गये यथार्थ को रेखांकित करते हुए लिखती है :–

–'वे कहा करते
किया करते हम से दिल्लगी
कहा करते हंसी – हंसी में
कर देंगी तुम्हारी ही हड्डियों से
नाशरी की भरपाई।
हम भी हंसा करते
कहा करते – लो क्या
तुम्हारी शामत आई ?
वे कहा करते
किया करते दिल्लगी
निकाहो हम से ही बेटी
हम हंसा करते
सहम कर रेत में धंसा गर्दन
करते देश की नीतियों की पढ़ाई।।
वे कहा करते
मूर्खो बनाओ बनाओ महल
आखिर आएं गे तो अपने काम।'[2]

1– लेखिका का जन्म अप्रैल 1956 में श्रीनगर में हुआ है। 'समय के बाद' गद्यरचना पर आप को भारत सरकार ने तथा जम्मू कश्मीर कल्चरल आकादमी ने पुरस्कार प्रदान किया है।
2– 'कोशुर समाचार'–नवम्बर 1995 ई॰–पृ॰–11 (कविता शीर्षक : वे खा रहे हैं मलाई)

(vi) विस्थापन की कविता में आक्रोश और विद्रोह का स्वर व्यवस्था को बदल डालने के लिये न केवल उत्तेजित करता है अपितु मानस के वीराने में प्रतिशोधात्मक चिनगारियों को भी सुलगा देता है। यह इस कविता का छठा आकर्षण है। अग्निशेखर की कविताओं में विद्रोह का स्वर अधिक प्रखर एवं जानलेवा है। श्रीनगर छोड़ते समय कवि अपने साथ कुछ भी नहीं ला सका यहाँ तक कि वह छोटा सा ब्रीफ़केस भी उनसे छूट गया जिस में उन्हेंने कुछ ज़रूरी कागज़, परीक्षाओं के प्रमाण पत्र एवं अंक तालिकाएँ रखी थी। हर क्षण जोखिम को गले लगा कर उन्हें ने दहकते अंगारों के ऊपर से चलने की क्षमता जुटाली। तलवे झुलस गये, एक बार नहीं – कई बार – बार बार, लेकिन अंगारों की दहक उन के संकल्प को शक्तिहीन न कर सकी। उन की विद्रोही कविताओं में युवा कवि का भीतरी आक्रोश, अन्याय को सहन न कर सकने का दृढ़संकल्प और विषम परिस्थिति को बदल डालने की कटिबद्धता सर्वत्र देखने को मिलती है। उन का मानना है –'इस संसार को झिंझोड़ दिये जाने की ज़रूरत है। ताकि भविष्य की पीढ़ियों के सवालों के आगे हमें खामोश न रहना पड़े। यह मुश्किलों से जूझने का समय है।'[1]

अग्निशेखर का शायर (शाइर) अपने मानस के प्रति ईमानदार है। समय ने उन्हें ज़हरीले विषघूँट पीने के लिये विवश किया टूटन के शिकन उन के माथे पर कहीं दिखाई नहीं दिये। वे लिखते हैं :–

'जब कविताएँ वजह बनीं
मेरे निष्कासन की
मैं ने और ज़्यादा प्यार किया जोखिम से
अवसाद और विद्रोह के लम्हों में
मैं ने मारी आग में छलांग
और जिया
शायर होने की कीमत अदा करते हुए।'[2]

यथार्थ के ऊपर से छद्म शिष्टता का झीना आवरण हटा कर 'भरत' आक्रोश के कारणों को रेखांकित करते हुए विद्रोह का स्वागत करने अथवा

1– 'मुझ से छीन ली गई मेरी नदी'–अग्निशेखर–आवरण पृष्ठ
2– 'मुझ से छीन ली गई मेरी नदी'–अग्निशेखर– पृ.–15 (कविता शीर्षक : तूत के अंगार)

विद्रोही बन कर जीने की प्रेरणा देते हुए लिखते हैं :–

–'जीवित ही जिन के सीने को फाड़
निकाल लिए जिगर,
नोच ली खाल
लटका दिया चिनार से,
बाँध बोरी में
फेंका प्रवाह में,
अपहरण कर
गुप्तांगों पर किए प्रहार,
भून दिया गोलियों से
जिन्हें –
कतार में खड़ा करके,
पूछती हैं वे रूहें
हम से कई सवाल –
जम गया है क्या
तुम्हारी धमनियों का रक्त
अधिकारों की लड़ाई
लड़ नहीं सकते ?'[1]

(vii) विस्थापन की कविता का सातवाँ आकर्षण है उग्रपंथी नकाबपोश का तसव्वुर।

आज के आतंकवादी युग में नकाबपोश उग्रवादी का तसव्वुर अस्तित्व की जड़ों को भी हिला देता है। जीते जी मर जाने के लिये ए॰के॰ 47 अथवा कलाशनकोप लिये प्रेतात्मा सदृश नकाबपोश की क्षणिक उपस्थिति भी रक्त प्रवाही धमनियों में रक्त संचार को रोकने के लिये पर्याप्त है। लेकिन 'सन्तोषी' उस की अन्तरात्मा को टटोल कर उसके भीतर छिपे मानवीय संवेदनाओं को तलाशने का प्रयास करता है। उन्हें इस बात का पूर्ण विश्वास है कि एक एक निर्मम हत्या करने से पूर्ण वह पहले अपनी ही हत्या कर देता है। 'नकाबपोश' शीर्षक कविता में 'संतोषी' लिखते हैं :–

1– 'फिरन में छिपाए तिरंगा'–"भरत"–पृ॰–39–40 (कविता शीर्षक : सवाल!)

—'इस बात से
किसे इंकार हो सकता है
कि नकाबपोश का भी होता होगा
कोई चेहरा, कोई घर, कोई पता
और आँखों में छिपे दो आँसू
जिन्हें वह एकान्त में
गिरने देता होगा अधरों तक।'[1]

और जब इस बात का विश्वास हो कि यह नकाबपोश कोई पराया नहीं मेरा ही विद्यार्थी है जो मेरे आंगन में अल्टीमेटम का पर्चा फेंक कर गुरुदक्षणा चुकाने की नव्यतम पद्धति को अपना रहा है तो आँखों के सामने केवल सातगज़ आसमान ही दिखाई देने लगता है। "शान्त" जी अपनी कविता 'प्रमाण पत्र नहीं है मेरे पास' में लिखते हैं :-

—'नहीं
नहीं; वह प्रमाणपत्र नहीं था
जो पलायन की उस रात, मुंह ढक कर
मेरा विद्यार्थी मेरे आंगन में फेंग गया था
वह
मुझ से अक्षर अक्षर सीखे मेरे शिष्य का हस्ताक्षरित
अल्टीमेटम था
जिस की रू से
अगली सुबह उगने वाला सूरज
मेरे रोशनदान पर रखा
टाइम बम था।'[2]

(viii) विस्थापित समाज जब अपने अतीत और वर्तमान को एक साथ देखने का प्रयास करता है तो बरबस (All of a sudden) अपने खण्डहरनुमा अस्तित्व पर आठ आठ आँसू रो उठता है। उसकी मानसिक पीड़ा, पराजयबोध तथा खंडित अस्तित्व का गहराता एहसास विस्थापन की कविता में कई प्रकार से व्यक्त हुआ है। अभिव्यक्ति के स्तर पर यदि इसे

1— 'यह समय कविता का नहीं'—सन्तोषी'—पृ॰—29 (कविता शीर्षक : नकाबपोश)
2— 'कविता अभी भी'—रत्तलाल शांत—पृ॰—153 (कविता शीर्षक : प्रमाण चत्र नहीं है मेंरे पास)

पीड़ा बोध कहें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। कहीं उसे अपने वतन की याद कलपाती है तो कहीं वर्तमान में अपनी बूढ़ी माँ की दीनहीन अवस्था रूला देती है। अतः अतीत और वर्तमान की टकराहट से उत्पन्न गहन पीड़ा-बोध विस्थान की कविता का आठवाँ आकर्षण है।
दीपावली के शुभअवसर पर पूर्व स्मृतियाँ मन को उदास कर देती हैं। फ्लैश् बैक (पूर्व स्मृति अंकन) पद्धति के द्वारा कवि भूत को वर्तमान के साथ जोड़ कर भविष्य के लिये सुरक्षित बना देता है। शताब्दियों से हम ज्योति पर्व मनाते चले आये हैं लेकिन समसामयिक सन्दर्भों की पृष्ठभूमि में इस उत्सव पर बधाइयाँ पाने से पूर्व ही शुभकामनाएँ देने के लिए विवश हैं और यह विवशता जीवन जीने की नहीं अपितु जीवन खोने की निशानी है। नेहरू का गुलाब आज गर्म लहू की बूंद जैसा लगता है। चाहे दीप सर्वत्र उत्सवी मुद्रा में क्यों न जल रहे हूँ।[1] अग्निशेखर 'ज्योतिपर्व' कविता में लिखते हैं :-

> -'मैं ने बरसों से नहीं मनाई दीपावली
> अपने घर में
> शुक्रिया मेरे देश
> मुजाहिदों ने आराम से जला डाला
> मेरा घर
> शुभ कामनाएँ तुम्हें ज्योति पर्व पर ।'[2]

शरणार्थी शिविर में लिखी गई एक शीर्षकहीन कविता 'संतोषी' की एक आकर्षक कलात्मक रचना है जिस में संवेदना के स्तर पर गाँव के कुम्हार से बतियाने का मंज़र कवि की रचना प्रक्रिया को न केवल महत्त्वपूर्ण बना देता है अपितु ज़िन्दगी के सूनेपन की पीड़ा को भी मुखरित कर देती है। बीते हुए कल की याद कभी कभी असह्य वेदना का कारण बन जाती है। मन ही मन रुला भी देती है और वर्तमान को बदल डालने की प्रेरणा भी देती है। विस्थापन में दीपाली की रात में देखा गया सपना कवि के मानस पटल पर अंकित होकर शब्दों के माध्यम से इस प्रकार मूर्त हो उठा है:-

---

1- 'मुझ से छीन ली गई मेरी नदी'-अग्निशेखर-पृ०-81
2- 'मुझ से छीन ली गई मेरी नदी'-अग्निशेखर-पृ०-81 (कविता शीर्षक : ज्योति पर्व)

—'दीपली की रात
मेरे सपने में
अपने गाँव का कुम्हार आया
और बहुत रोया
उस के आँसुओं से
भीग गई
मेरी मिट्टी की स्मृतियाँ
क्या गम है
पूछा मै ने
पहले चुप रहा कुम्हार
फिर धीरे–धीरे बोला
इस बार दीपाली पर
मेरे दिये
किसी ने नहीं लिये
मैं ने कुम्हार से
दिया लेकर
उसे अपने सब से ताज़ा घाव पर
रख कर जला दिया
दीपाली की रात।'[1]

भीषण वर्तमान का दर्दभरा एहसास कुंभीपाक नरक की यातना से कुछ कम नहीं। विस्थपन में बूढ़ी माँ की पीड़ा को अग्निशेखर सहन नहीं कर पाता। एक माँ को पीछे छोड़ अब तो जन्म माता ही जन्म जन्मान्तरों की संचित पूंजी है उन के पास। विगत की सही पहचान जब वर्तमान की तपिश से कराह उठती है तो कवि के घायल हृदय पर पड़ी पपड़ी को मानो कोई खरोंच कर घाव को पुनः रक्त स्राव बना देता है :–

—'काठ की खूँटी से टंगे
तुम्हारे फिरन के साथ
हमारी कितनी स्मृतियाँ जुड़ी थी
रोती है यहाँ जलावतनी में मेरी माँ

1— 'यह समय कविता का नहीं'—सन्तोषी—पृ॰—79 (शीर्षकहीन कविता)

इत्मीनान से मरने की जगह से वंचित
बरसों पुरानी काठ की सन्दूकची को याद कर
वह पगला जाती है इस कुम्भीपाक में।'[1]

घर छूटने की पीड़ा का गहराता एहसास शान्त जी को भी अशान्त कर देता है। रह रह कर उस की याद तथा उस के साथ जुड़े परम्परागत रिश्तों की मीठी कसक आज उसे अधीर बना देती है। खोये हुए कल की याद उस की साँसों में गांठ बन के अटक गई है। आज गोली और थैली के उलझे दायरों के बीच उस का घर घिर गया है[2]। ऐसी भीषण दमघोटू स्थिति में मातमी मुद्रा में विलाप कर के 'शान्त' मैान हो जाते हैं :—

—'छूटा
दूर, बहुत दूर हो रहा है
मेरा घर,
मन की हर सम्भव उडान से दूर.......
यद्यपि
सांस में गांठ हो के अटक गया है।
कोई ख़बर नहीं लाया
कोई संदेसा उड़ के नहीं आया।
कोई जाए और मेरा घर देख आए।'[3]

फरवरी सन् 1992 ई॰ में लिखी 'ऋृतुचक्र' शीर्षक कविता में "शान्त" जी बीते हुए कल की पुनः स्मृति से उदास होकर पीले फुंदने वाली सरसों से अपने मानस के रिश्ते को व्यक्त करते हुए लिखते हैं :—

—'दो बरस पहले।
इसी दिन
चल पड़ा था मेरा काफ़िला,
वतन को विदा कहती भीगी नज़रों से पगडंडी पगडंडी
खेत खेत
घाटी घाटी

1— 'मुझ से छीन ली गई मेरी नदी'—अग्निशेखर—पृ॰—25 (कविता शीर्षक : नुन्दऋृषि—1)
2— 'कविता अभी भी'—रत्नलाल शांत—पृ॰—155
3— 'कविता अभी भी'—रत्नलाल शांत—पृ॰—155 (कविता शीर्षक : कोई मेरा घर देख आए!)

पीले फुंदनों वाली सरसों तड़प उठी थी

:

तुम देख सकते हो
छपा है तभी से पीला फूल मेरी आँखों में
उभरा ही होगा
मेरी पीड़ा का दाग़ उस के सीने में।'[1]

'मुझ से छीन ली गयी मेरी नदी' अग्निशेखर की एक सशक्त रचना है। कवि ने अपने सांस्कृतिक विरसे के पीछे छूट जाने के एहसास को ऐतिहासिक सन्दर्भों की पृष्ठभूमि पर ईमानदारी के साथ व्यक्त किया है। 'छीन लेना' तथा 'छिन्न भिन्न' होना – दोनों में स्पष्ट अन्तर है। 'छीन लेने' में शक्ति प्रयोग का संकेत है तथा छिन्न भिन्न हो जाने में संयोगवश अथवा बिना कारण घटना घट जाने की सम्भावना निहित रहती है। शताब्दियों से चले आये कश्मीर के राजनीतिक घटना–चक्र को यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाये तो अग्निशेखर के इस कथन की सार्थकता स्वतःसिद्ध होजाये गी :–

–'मुझ से छीन ली गयी मेरी नदी
बदल गया उस का नाम

:

एक दिन चुपचाप बदल दिये गये
मेरे सैंकडों गाँव के नाम
जैसे आँख मूँद कर पहुँचा दिया गया हो
किसी अरब–देश में

:

मुझ से छीन लिये गये धीरे–धीरे
मुस्कान, बर्फ़, पहाड़ियाँ,
पेड़, मौसम, त्यौहार
और समूची मातृभूमि अबकी बार।'[2]

स्वप्नभंग की स्थिति में व्यथा का गहन एहसास स्वयं व्यथा के लिये भी सहय न रहा। 'भरत' वर्षों विस्थापित कैम्प में रह कर मानसिक पीड़ा के

1–'कविता अभी भी'–रत्नलाल शांत–पृ.–140–141 (कविता शीर्षक : ऋतुचक्र)
2–'मुझ से छीन ली गयी मेरी नदी'–अग्निशेखर पृ.–59(कविता शीर्षक–मुझ से छीन ली गई मेरी नदी)

शिकार हुए। लगता है कि मातम भी कैम्प के मातमी माहौल से कांप उठा है। सर्वत्र निराशा घर कर गई और जीवन पथ पर चारों दिशाओं में विपत्ति के बादल गहनतम रूप में छा गये हैं। तम्बूनुमा घर में मौत को गले लगा कर जीवन जीने की पीड़ा जब उन्हें कुंठित कर देती है तो भीतरी अकुलाहट को वाणी प्रदान करते हुए लिखते हैं :—

—'सुन कर मेरी व्यथा
व्यथा भी —
व्यथित हो उठी
और पोंछने लगी
मेरी व्यथा को
अपनी व्यथा की आँखों से।'[1]

'फिरन में छिपाए तिरंगा' काव्य—संग्रह पर अपनी प्रतिकिया व्यक्त करते हुए श्री अशोक वाजपेयी लिखते हैं :—
'निस्संदेह संग्रह प्रबुद्ध वर्ग को कश्मीर के सम्बन्ध में नए सिरे से सोचने पर विवश करे गा।'[2]
प्रत्यक्ष रूप में विस्थापित समाज और परोक्ष रूप में समस्त भारत आज विस्थापन के परिणाम स्वरूप गहन वेदना का शिकार हुआ है। परिणाम दूर गामी होंगे। जिन्हें श्रीनगर विरासत में मिला था वही आज दूसरों से पूछते हैं कि श्रीनगर का रास्ता कहाँ है। विभ्रम की आवस्था में श्रीनगर का मूल निवासी शंकालु हृदय से लोगों से पूछ बैठता है कि क्या सचमुच वह एक विस्थापित है— अपने ही देश में। अपने ही घर में बेघर। अपनी ही सम्पदाओं से वंचित और अपनी ही क्षमताओं से अनभिज्ञ। उस के इस प्रश्न में कई अर्थ एक साथ ध्वनित होते हैं जब वह आते जाते व्यक्तियों से महाराज कृष्ण 'संतोषी' के माध्यम से पूछता है :—

—'क्या यह रास्ता
सचमुच ही श्रीनगर को जाता है
कैसा अचरज है

1— 'फिरन में छिपाए तिरंगा'—भरत'—पृ॰—98 (कविता शीर्षक : व्यथा का ठहाका)
2— 'कोशुर समाचार'—जनवरी 1996 ई॰—पृ॰—21 (फिरन में छिपाए तिरंगा—पुस्तक समीक्षा—अशोक वाजपेयी)

जिन्हें कभी विरासत में मिला था
श्रीनगर
वेही आज सब से पूछ रहे हैं
श्रीनगर का रास्ता।'[1]

और श्रीनगर की वर्तमान स्थिति वस्तुतः श्रीहीन नगर की याद दिलाती है। एक उजड़ा हुआ शहर, खण्डहरों का शहर, तालाबन्द कंकालनुमा मकानों का शहर, ध्वस्थ देवस्थानों का शहर, स्वचालित शस्त्रों एवं हथगोलों से बर्बाद हुआ शहर, अन्तहीन कब्रिस्तानों का शहर, दहशत, खोफ़ एवं भय से आक्रान्त शहर, दानवीय लीलाओं का शहर, सिविल करफ्यू का शहर, लूटमार का शहर, क्रैक डाउनों से क्रैक होचुका शहर, हताश और निराश शहर जिस पर कवि 'संतोषी' द्वारा लिखा गया शोकगीत ज़ैनुलाबिदीन (बड़शाह) को श्रीनगर के उजड़ने की सूचना इस प्रकार देता है :–

–'श्रीनगर अब रहा नहीं
श्रीनगर
वितस्ता ढो रही है मैल
या फिर लाशें
भय पैदा कर रहे हैं
ये चिनार
बर्फ़ अपनी धवलता से
जगा देती है
कफ़न की स्मृतियाँ
:
तुम कहाँ हो ज़ैनुलाबिदीन
देखो उजड़ रहा है
मेरा श्रीनगर।'[2]

विस्थापित समाज के बिखराव से क्षुब्ध कवयित्री क्षमा कौल घर के उजड़ने की पीड़ा से विह्वल ज़िन्दा लाश के समान जीने की यातना को झेलते हुए अपनी खोयी हुई पहचान को तलाशने का भरसक प्रयास करते हुई

1– 'यह समय कविता का नहीं'–सन्तोषी–पृ॰–54 (कविता शीर्षक : श्रीनगर का रास्ता)
2– 'यह समय कविता का नहीं'–सन्तोषी–पृ॰–56 (कविता शीर्षक : शोक गीत)

लिखती हैं :–

–'घर पानी में था? बह गया ?
घर शिला पर था? ढह गया ?
:
छत तो थी ? होगी ? या छलनी ?
आंगन तो था ? होगा? या असलेह काडेर?
:
सोचा था न कि बस कुछ दिनों की बात है
लौट आएं गे ?
:
फिर मर गए? ज़िन्दा मर गए?
क्या हम ज़िन्दा हैं ? अनुसंधान करो?
:
देखो पता करो – क्या हम जीवित हैं ?
:
पता दो कहाँ है ? अनुसन्धान करो ?
उस मार्ग का – जहाँ धरती पर घर था –
जहाँ जड़े थीं ....
पता करो ....!'[1]

इस विस्थापन का बच्चों की सोच पर क्या प्रभाव पड़ा– बाल मनोवृत्ति से जुड़े अनेक बिम्ब सर्जनात्मक कलाकार के रचना कौशल से मूर्त हो उठे हैं। यथार्थ बोध के स्तर पर भी ये बिम्ब अपना स्थायी प्रभाव छोड़ देते हैं। बच्चे को चिन्ता है कि घर छोड़ते समय खिलौने घर पर ही रह गये। वह पापा से पूरी मासूमियत के साथ सवाल पूछता है :–

–'पापा, अगर सब से तेज़ दौड़ता है मन
तो हम उसे इंजन के बदले
लगाये जहाज़ में
कितना तेज़ दौड़े गा जहाज़ पापा
हम उस में चुपके से जाएँ गे घर

1– 'कोशुर समाचार'–अगस्त 1996 ई॰–पृ॰–71 (कविता शीर्षक : भ्रमजाल)

और ले आयें गे अपने खिलौने
पापा, क्या हमें फिर भी पकड़ पाये गा
उग्रवादी ?'[1]

(ix) इतनी भयंकर स्थिति का सामना करने के बावजूद विस्थापन की कविता में सशक्त आशावादी स्वर सुनहरे कल का आश्वासन देता हुआ दिशाओं में गूँज रहा है। यह इस कविता का नवाँ आकर्षण है। रचनाकार के अदम्य उत्साह का सशक्त प्रमाण और जीवन को सकारात्मक रूप में स्वीकारने का दृढ़संकल्प। तमस अन्धकार के पश्चात् विपत्ति के बादल अवश्य छँट जायें गे और पुनः होगा– अम्मीदों भरा सूर्योदय। अपने कल के ज़ख्मों पर उम्मीदों की पट्टियाँ बान्धते हुए शान्त जी 'पोथियाँ' शीर्षक कविता में निजी संकल्प को वाणी प्रदान करते हुए लिखते हैं :–

–'कश्मीर
तुम मुझे तार तार कर सकते हो
पन्ना पन्ना बिखेर सकते हो
पर मैं टुकड़ा टुकड़ा समेट कर जियूँ गा
फिर सम्पूर्ण हो जाऊँगा
और तुम्हें फिर पाऊँगा।'
:
जानते हो ?
घाटी के बाहर तुम को कैसे जी रहा हूँ
तुम्हारी पोथियों के बिखरे पन्ने कैसे सी रहा हूँ ?'[2]

सुनहले कल की आश 'भरत' को इसप्रकार आशावान बना देती है :–

'धुंध हटाता, फुलों को चुनता
माला गूँथता
आगे बढता रहा –
एक अस्तित्व
संजोए
सुनहरे कल की आश।'[3]

1– 'मुझ से छीन ली गई मेरी नदी'–अग्निशेखर–पृ॰–13 (कविता शीर्षक : पूछता है बच्चा)
2– 'कविता अभी भी'–रत्नलाल शांत–पृ॰–162–163 (कविता शीर्षक : पोथियाँ)
3– 'फिरन में छिपाए तिरंगा'–भरत–पृ॰–100 (कविता शीर्षक : कल की आशा)

सतीसर में ही जलोद्भव का पुनः विनाश होगा। पहले भी हुआ है और आज भी होगा। इतिहास अपने आप को दोहराता है अवश्य :–

–'चीथड़े – चीथड़े तम्बुओं से
एक दिन निकले गी उन की आहों का
ज्वार
और जलोदभव मारा जाए गा
उन के भीतर
उफनते सतीसर में।'[1]

सूर्योदय अवश्य होगा, 'संतोषी' इस विश्वास के साथ उस के स्वागत में प्रतीक्षारत है। वर्तमान से वे क्षुब्ध एवं क्रुद्ध हैं लेकिन निराश नहीं :–

–'यह मानते हुए कि उन के अधिकार में है
मेरा सारा आकाश
मुझे पूरा भरोसा है
इस बार सूरज मेरी नाभि से निकले गा
पहले से अधिक उज्जवल
अधिक ऊर्जावान।'[2]

कश्मीर हमारा है – यह कोई राजनीतिक नारा नहीं अपितु एक ऐतिहासिक सच्चाई है। हज़ारों वर्षों का प्राचीन इतिहास इस की गवाही दे रहो है। इस सच्चाई को नकारना आकाश की ओर मुहँ करके थूकने के बराबर बेमानी होगा। 'शान्त' जी अपने संकल्प को दोहराते हुए लिखते हैं :–

–'कश्मीर !
तुम तोता–चश्म हो सकते हो
पर सदियों से लिखे अपने ही अक्षरों की मीमांसा
नकार सकते हो ?
मैं तुम्हारी ही पोथियों से
तुम्हें पाने की नई तिथियाँ

1– 'फिरन में छिपाए तिरंगा'–भरत–पृ॰–83 (कविता शीर्षक : मुख्य धारा)
2– 'यह समय कविता का नहीं'–संतोषी–पृ॰–20 (कविता शीर्षक : 'घायल चुप्पियाँ)

खोज लूँ गा।

इतना समझ लो, कश्मीर !'[1]

(x) विस्थापन की कविता में विस्थापित समाज के शक्तिहीन आधारहीन/दिशाहीन अस्तित्व का एहसास शिद्दत के साथ महसूस हो रहा है और यह इस कविता का दसवाँ आकर्षण है। 'भरत' के शब्दों में कश्मीर की कश्मीरियत आज तम्बुओं के तपे तवों पर एक ज़िन्दा मछली की तरह तड़प रही है।[2] घर लैटने की आस जब बुझ जाती है तो एक बूढ़ा विस्थापित आँखों–आँखों में ही आकाश नापता हुआ दिखाई देता है। अग्निशेखर लिखते हैं :–

–'बूढ़ा बिस्तर पर लेटे
आँखों–आँखों नापता है आकाश
फटे हुए तम्बू के सुराखों से
उस की झुर्रियों में गिर रही है समय की राख
चुपचाप घूम रही है
सिरहाने के पास
घड़ी की सूई
उस की बीत रही है
घर लौटने की आस।'[3]

विस्थापन का जीवन जीते जीते कभी कभी आदमी की हिम्मत जवाब दे बैठती है। क़दम क़दम पर समस्याओं से जूझना तो ठीक था लेकिन दिशाहीन जीवन की विवशता को सहन करना असम्भव हो जाता है। निराशा घर कर जाती है, साहस का दम घुटता है और निश्चेष्ट जीवन जीने का एहसास मर्मान्तक पीड़ा का कारण बन जाता है। 'संतोषी' इस स्थिति में स्वयं अपने लिये एक शोकगीत का सर्जन करता है :–

–'मैं यह कैसा जीवन
व्यतीत करने लगा हूँ
कि अपने जीवित होने के सबूत

1– 'कविता अभी भी'–रत्नलाल शांत–पृ.–163 (कविता शीर्षक : पोथियाँ)
2– 'फिरन में छिपाए तिरंगा'–भरत–पृ.–56 (कविता शीर्षक : निर्वासित कश्मीरियत)
3– 'मुझ से छीन ली गई मेरी नदी'–अग्निशेखर–पृ.–37 (कविता शीर्षक : आस)

ढूँढने लगा हूँ
घड़ी की सूइयों के साथ
घूमते हुए भी लगता है
कि कहीं ठहर गया हूँ
जैसे काठ का कोई घोड़ा।'[1]

विस्थपित समाज इस बात से भली भाँति परिचित है कि उन की वर्तमान दुर्दशा के लिए उत्तरदायी कौन है। 'संतोषी' की एक 'मिनी' कविता इस सन्दर्भ में कई बिन्दुओं से विचारणीय है :–

–'टेबल पर
घुमा कर ग्लोब
कहा मेरी बेटी ने
पापा
क्या तुम कभी गए हो पकिस्तान ?
क्या पाकिस्ता में
मानसून
मुसलमान बन जाते हैं ?
और मैं चुप
इतिहास को भूलने की
कोशिश कर रहा हूँ ।'[2]

(xi) विस्थापन की कविता में अभिव्यक्ति की हष्टि से एक विशेष आकर्षण कविता के 'मिनी' आकर में देखा जा सकता है। यह इस कविता का ग्यारहवाँ आकर्षण है। 'मिनी' कविता समसामयिक हिन्दी कविता की एक विशेष उपलब्धि है। चिन्तन अथवा अनुभव के स्तर पर रचनाकार ब्रश के चन्द हल्के आघातों से ही किसी विशिष्ट मनःस्थिति को आकार प्रदान करता है। अभिव्यक्ति व्यंग्यात्यक भी हो सकती है, सांकेतिक भी अथवा प्रतीकात्मक भी। 'भरत' की 'वर्ष गांठ शीर्षक मिनी कविता, संतोषी की 'ग़रीबबच्चे' तथा अग्निशेखर की कविता 'थेड़ा सा आकाश' इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। तीनों में व्यंग्य का पुट बहुत गहरा है। 'भरत' विदेशी

1– 'यह समय कविता का नहीं'–संतोषी–पृ॰–47 (कविता शीर्षक : एक शोकगीत अपने लिए)
2– 'यह समय कविता का नहीं'–संतोषी– पृ॰–71 (कविता का शीर्षक : पाकिस्तान)

संस्कृति/आचार विचार पर चोट करते हुए लिखते हैं :–

–'हम वर्ष गांठ पर
आशीर्वचन पाते हैं।
वे दीये बुझा कर
रंग रलियाँ मनाते हैं।'[1]

'संतोषी' दरिद्र जीवन की विवशता पर तीख़ी टिप्पणी करते हैं:–

–'गरीब बच्चे
धूप से नहीं घबराते
वे डरते हैं ठंड से
जो सब को
उन के बदरंग स्वेटर
दिखलाता है।'[2]

'अग्निशेखर' को गहन निराशा में नवप्रभात की कोई उम्मीद नहीं है :–

–'मेरी सोयी हुई माँ के चेहरे पर
किसी छिद्र से पड़ रहा है
थोड़ा सा प्रकाश
हिल रही हैं उस की पलकें
कौन कर रहा इस अन्धेरे में
सुबह की बात।'[3]

इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि हिन्दी कविता की नव्यतम प्रवृत्तियों में विस्थापन की कविता का अपना विशेष महत्त्व है। देश के अन्य क्षेत्रों में रहने वाले हिन्दी कवि ने विस्थापन को लेकर बहुत कम लिखा है। इस के कई कारण हैं।

(1) पिछले दिनों एक बार हिन्दी प्रदेश में एक हिन्दी प्रेमी सज्जन से मेरी मुलकात हुई। कहने लगे–अरे ! अब तो कश्मीर की हालत बहुत सुधर गई है। आप लौट क्यों नहीं जाते ? मैं ने विनम्रता के साथ पूछा – आप को कैसे मालूम है कि कश्मीर में हालात सुधर गये हैं? तुरन्त उन्हेंने

1– 'फिरन में छिपाए तिरंगा'–भरत–पृ.–107 (कविता शीर्षक : वर्षगांठ)
2– 'यह समय कविता का नहीं'–सन्तोषी–पृ.–50 (कविता शीर्षक : गरीब बच्चे)
3– 'मुझ से छीन ली गई मेरी नदी'–अग्निशेखर–पृ.–10 (कविता शीर्षक : थोड़ा सा प्रकाश)

पूरी मुस्तैदी (तत्परता) के साथ उत्तर दिया – अरे भाई! कुछ ही दिन पहले बच्चे वैष्णवदेवी के दर्शन करके सकुशल लौटे। उन्हें कहीं भी किसी गड़बड़ की भनक तक न मिली। मैं ने सिर झुका कर हामी भर ली। इस देश का यह बड़ा दुर्भाग्य है कि प्रादेशिक स्तरपर हम सचेत तो हैं लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर उतने ही उदासीन।

(2) यह उन का भोगा हुआ यथार्थ नहीं। मनसः वे कश्मीर की सांस्कृतिक विरासत से जुड़े नहीं हैं। किसी महानगर की पॉश कालोनी में रहने वाले साहित्य कार को क्या मालूम कि 19 जनवरी 1990 ई० की रात कश्मीर घाटी के भीतर क्या हुआ। विस्थापन की पीड़ा को वही महसूस कर सकते हैं जिन्हों ने स्वयं इतिहास के किसी काल खण्ड में इस त्रासदी को झेला हो। सिन्धी और पंजाबी देशवासियों से पूछिये कि विस्थापन किसे कहते हैं ?

(3) इस प्रकार के काव्यलेखन के लिये जिस सांस्कृतिक – ऐतिहासिक चेतना की ज़रूरत है, कश्मीर की लोक परम्पराओं, मान्यताओं एवं विश्वासों की गहन पहचान की अपेक्षा है– वह उन के पास नहीं।

(4) और यह भी सत्य है कि इस विषय को लेकर लिखी गयी रचनाओं का प्रिंट और इल्कट्रॉनिक माध्यमों द्वारा स्वागत नहीं होता। यदि कल कश्मीर–विस्थापन को लेकर दूरदर्शन द्वारा विशेष कवि–सम्मेलन का आयोजन हो तो देखिये, सिद्धहस्त हिन्दी कवि कैसे बड़ भैया बन कर आँसू बहाता देखा जाये गा। आज के इस कम्प्यूटर – युग में कुछ भी तो असम्भव नहीं।

प्रदेश के हिन्दी कवि ने जिस तत्परता के साथ अपने भोगे हुए यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान की है उसका बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक की हिन्दी कविता में न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व है अपितु सर्जन के स्तर पर कथ्य और शिल्प की दृष्टि से भी अपनी विशिष्ट पहचान है। इसे कोई अतिश्योक्ति न समझे अपितु अहिन्दी भाषी हिन्दी कवि के जीवित होने का यह प्रमाण है और अहिन्दी भाषी हिन्दी कवि के बिना राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी कविता अपूर्ण है।

--- *** ---

'बादलों में आग'
इतिहास का चश्मदीद गवाह

कश्मीरी भाषा में एक शब्द है 'ओबरुँ गाश'– हल्के बादलों के बीच से झाँकता प्रकाश और एक मुहावरा है – 'नबस नार ह्योन'– आकाश में आग लग जाना। विश्वास किया जाता है कि कई दिनों से मेघाच्छादित आकाश के किसी कोने में जब दिन ढलते अकस्मात् मेघ खण्डों में आग लग जाती है अथवा लालिमा छा जाती है तो निश्चित रुप से दूसरे दिन मेघरहित आकाश में स्वर्ण रश्मियाँ अपनी छटा बिखेर देती हैं और हतोत्साहित जन मानस में उम्मीदों के नवानकुर मुसकुराने लगते हैं। दोनों प्रयोग स्वस्थ आशावादी भविष्य के सूचक हैं।

कश्मीर में एक लोक विश्वास यह भी है कि जब कभी सायम् काल में आकाश कहीं से रक्तिम वर्ण का दिखाई दे, ऐसा प्रतीत हो कि आकाश में आग लग गई है तो लोग भयभीत हो कर परस्पर एक दूसरे से कहते हैं कि कहीं किसी निर्दोष की हत्या हो चुकी है और अकारण बहाया गया रक्त आकाश को भी रक्तिम बना कर आज भावी अनिष्ट की पूर्व सूचना दे रहा है। लोग भयभीत हो कर अनिष्ट निवारण के हेतु प्रार्थनारत हो जाते हैं। इस लोक विश्वास से उत्पन्न भय का सम्बन्ध भूत अथवा वर्तमान में घटी हुई घटना के साथ है।

'बादलों में आग' शीर्षक इस विश्वास के साथ अधिक जुड़ा है। यही इस का प्रामाणिक सन्दर्भ हैं क्योंकि यह बीते हुए कल और वर्तमान की व्यथा–कथा से जुड़ा शीर्षक है।

हिन्दी गध लेखिका क्षमा कौल का प्रथम काव्य संग्रह 'बादलों में आग' भयावह भूत एंव वर्तमान का चश्मदीद गवाह (प्रत्यक्षदर्शी) बन कर 2000ई॰ में अनामिका प्रकाशन, 185–नया बैरहना– इलाहाबाद–3, उत्तर प्रदेश से प्रकाशित हुआ।

88 कविताओं का यह संग्रह कवयित्री ने अपने बच्चों के पापा को उपहार स्वरूप दबे शब्दों में भेंट किया है पूरी तन्मयता और एकाग्रता के साथ।

समकालीन हिन्दी साहित्य के एक सशक्त गद्य लेखक, कवि एवं पत्रकार श्री मंगलेश डबराल ने काव्य संग्रह के आवारण पृष्ठ के फ्लैप पर नपे तुले शब्दों में समकालीन हिन्दी कविता के यर्थाथ को रेखंकित करते हुए तथा कवयित्री की रचना क्षमता की गहराई को नापते हुए अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

संग्रह के मुखपृष्ठ एवं आवरण पृष्ठ पर हिमा कौल की सर्जनात्मक .प्रतिभा खिल उठी है। मुझे ऐसा लगता है कि आवरण चित्र क्षमा कौल की छोटी बहन हिमा कौल द्वारा निर्मित एक टेरा–कोटा के फोटू चित्र पर आधारित है। हिमा इस कला में सिद्ध हस्त है। माँ अपने दो बच्चों के साथ विस्थापित अवस्था में सर पर गठरी लादे दिशाहीन और अन्त हीन यात्रा–पथ पर धीरे धीरे क़दम बढ़ा रही है। खुली आखों से अविश्वसनीय यथार्थ का सामना करते हुए वह आने वाले कल के विषय में विचारमग्न है। उस की आँखें सामने की ओर बिल्कुल गड़ी हुई हैं।

पिछले ग्यारह वर्षो सें अपने ही देश में शरणार्थी बन कर रहने की विवशता झेलती हुई कवयित्री क्षमा कौल समस्त विस्थापित समाज की दबी कुचली मानसिकता को पूरे वेग और आक्रोश के साथ अभिव्यक्ति प्रदान कर रही है। वह अपने समकालीन सन्दर्भों के साथ भी जुड़ी हुई है।

संकलित 88 कविताओं को प्रमुख रूप से निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:–

1– वे कविताएँ जिन में कश्मीर के ज़ख्मी सौन्दर्य की व्यथा है, वेदनाग्रस्त जीवन की छटपटाहट है, विह्वल कर देने वाली पीड़ा है, परिस्थितियों के प्रति आक्रोश है और अपने बौने अस्तित्व के प्रति घृणा। इन कविताओं में वह वर्तमान के प्रति निराश और भविष्य के प्रति आशावान दिखती है। 'जलावतनी', 'आएँ गे हम लौट कर', 'घर छूटा हुआ', 'शरणार्थी शिविर', 'रामायण', 'निष्कासन', 'जम्मू', 'ख़बर' आदि शीर्षक कविताओं में निस्संदेह देसी गुलाबों की महक में निरन्तर रिसते घावों की पीड़ा भी व्याप्त है।

2– वे कविताँए जिन में कश्मीर का सांस्कृतिक इतिहास समकालीन हिन्दी कविता को नये आयाम प्रदान करता है और हिन्दी भाषी पाठक अहिन्दी प्रदेशों के सांस्कृतिक इतिहास के साथ जुड़ जाता है अथवा उस के सम्पर्क में आता है। यहाँ शब्द प्रयोगों की सार्थकता इतिहास में वर्णित

घटनओं और दुर्घटनाओं के आधार पर ही सिद्ध हो सकती है। 'अरणिमाल', 'सम्मोहन', 'ललद्यद', 'क्षीर भवानी', शीर्षक कविताँए इस वर्ग के अन्तर्गत ली जा सकती हैं।

3– वे कविताएँ जो अपने आंचलिक परिवेश के साथ गहरी जुड़ी हुई हैं। मैं मात्र एक शब्द तक ही चर्चा सीमित रखूँ गा और वह है– 'चिनार'।

'चिनार' शब्द का अर्थ और इतिहास जानना एक बात है और चिनार की छाँव में बैठ कर जेठ की दुपहरी में आनन्द विभोर हो जाना दूसरी बात है। बसन्त में वासंतिक वैभव के साथ यह भव्य वृक्ष कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य में चार चाँद लगा देता है और शरद में स्वर्णिम छटा बिखेरता हुआ यह प्रकृति का श्रृंगार करता है। शिशिर में नग्नाकृत हो कर यह भीषण शीत के थपेड़े सहता हुआ कल के इन्तिज़ार में मुनतज़िर रहता है। चिनार की छाँव तले बैठ के मखमली प्रकृति की गोद में जिस ने नींद की चुसकियाँ न ली हों भला वह चिनार के वैभव को क्या समझे। कवयित्री क्षमा कौल के मानस को चिनार के भूत और वर्तमान ने बेहद प्रभावित किया है। भूत तो वैभव शाली रहा है पर चिनार के वर्तमान को समसामयिक ऐतिहासिक दुर्घटनाओं के सन्दर्भ में प्रतीकात्मक अर्थ देते हुए कवयित्री आज ज़ख़्मी चिनार, कोढ़ ग्रस्त चिनार, बूढ़ा चिनार, बच्चा चिनार, और पिता चिनार को देख कर भयावह सम्मोहन का शिकार हो जाती हैः–

'इस कारागार से
जैसे दिख रहा है
वर्दीपहना ज़ख़्मी चिनार

यह कैसा भयावह सम्मोहन।
कोढ़ ग्रस्त सिर खुजला रहा है चिनार
उँघ रहा है लथपथ
भूमि पर पड़ा
बूढ़ा चिनार।
पकड़रहा है अपनी मुठि्ठयों में
मज़बूत बन्दूक
बच्चा चिनार।

अपने पत्तों से
अपने मुहँ पर पड़ा ख़ून
पोंछ रहा है पिता चिनार।[1]

4– वे कविताएँ जो प्रत्यक्ष रुप से कश्मीर के 3.5 लाख निर्वासित लोगों की मानसिकता के साथ जुड़ी हुई हैं। यही कारण है 'घर' बार बार उस की सृजन–प्रक्रिया में सहभगी बनकर कहीं उसे रुला देता है कहीं ग़मगीन बना देता है और कहीं बेघर अवस्था में घर की तलाश मे भटका देता है। इस दृष्टि से 'शरद', 'घर–1', 'घर–2', 'जड़ें' शीर्षक कविताँए उल्लेखनीय हैं।

5– घर और वतन के परिवेश से हट कर लेखिका ने विशुद्व रुप से विचार प्रधान कविताएँ भी लिखी हैं जो उनके गहरे मनन और चिन्तन के साथ साथ समकालीन हिन्दी कविता से जुड़े कई सन्दर्भों की पहचान भी कराती हैं। सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से ऐसी कविताएँ कहीं कहीं दुरुहता के गहन तमस में उलझ कर सामान्य पाठक के लिये टेढ़ी खीर बन जाती हैं। इस प्रकार की कविताएँ कवयित्री की गहन अनुभूति, चिन्तन की परिपक्वता, बौद्धिक दबाव, परिवेश की पेचीदगी तथा विक्षुब्ध मानसिकता का शिद्दत से एहसास कराती हैं। 'हम', 'प्रकाशछिद्र', 'दीक्षान्त भाषण', 'आग की भूख', 'धुआँ', 'मैं धूल', 'प्रेम और मृत्यु', 'सूर्य प्रार्थना' शीर्षक कविताएँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

6– कवयित्री ने विशुद्व रुप से सर्जन के क्षेत्र में मौलिक प्रयोग भी किये हैं जिन पर स्वतंत्र रुप से चर्चा करना उपयुक्त हो गा। इन कविताओं के साथ उन का महानगरी अनुभव भी जुड़ा है। अस्तित्व बोध की पीड़ा भी निहित है और परिवेशजन्य निराशा, पराजय बोध एवं मोहभंग की छटपटाहट भी व्याप्त है। 'शब्द–मित्र', 'प्रतीक्षा', 'अन्तिमक्षण', 'मैं–2', 'शब्द', 'कविता का उद्गम', 'सूखे काठ के दिन', 'आबादियों के साथ', 'पुरुष' शीर्षक कविताएँ प्रयोग के स्तर पर सफल रचनाएँ हैं।

7–कविता के माध्यम से एक फ्लैश (कौंध) प्रस्तुत करने की बलवती इच्छा मिनी कविता के सर्जन का मुख्य कारण है। आज के कम्प्यूटर युग में टेलीविजन के स्क्रीन पर जिस प्रकार एक क्षण का दृश्य ही अभिव्यक्ति के

1– 'बादलों में आग' – पृष्ठ – 87

लिये पर्याप्त होता है उसी प्रकार चिन्तन अथवा अनुभव के स्तर पर रचनाकार ब्रश के चन्द हल्के आघातों से ही किसी विशिष्ट मनःस्थिति को आकार प्रदान करता है। अभिव्यक्ति व्यंग्यात्मक भी हो सकती है, सांकेतिक भी अथवा प्रतीकात्मक भी। आज कवि अपने मानस के स्क्रीन (परदे) पर उभरे दृश्य को तुरन्त जनमानस के स्क्रीन पर ट्रानस्मिट (स्थानान्तरित) करने के लिये अधीर हो रहा है। परिणाम स्वरुप मिनी कविता अपने अति सूक्ष्म (Miniature) रूप में आकार ग्रहण करती है। चार–छः पंक्तियों की पूर्ण कविता में कवि किसी तिलमिला देने वाली अनुभूति अथवा विचार बिन्दु को फ्लैश के रूप में आँखों के सामने प्रस्तुत करता है और बस कविता समाप्त हो जाती है। चन्द शब्दों के सार्थक प्रयोग से ही कविता निखर उठती है। क्षमा कौल के काव्य संग्रह में इस प्रकार की मिनी कविताओं का विशेष महत्त्व है। आख़िर समकालीन हिन्दी कविता के कथ्य और शिल्प से तो उन का गहरा सम्बन्ध है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है। 'कटा पेड़', 'दरबदर–1', 'घर–1', 'मैं धूल', 'सपने', 'रात', 'हम', शीर्षक कविताएँ संक्षिप्त आकार की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ कवयित्री की चन्द मिनी कविताओं को उद्धृत करना संगत हो गाः–

अ) <u>कटा पेड</u>

मैं अकेला और
अनेक चूल्हे
आँसुओं से सना
बुझ–बुझ के जलता हूँ।[1]

आ) <u>दरबदर</u>

पहले वे विसर्जित करते थे
अस्थियाँ
गंगा में आकर
अब वे बहाया करें गे
अस्थियों को ले जाकर
वितस्ता में।[2]

1– 'बादलों में आग' – पृ० 40
2– 'बादलों में आग' – पृ० 49

इ) सपने

विधवाएँ देखती हैं
सपने सधवाओं के
परित्यक्ताएँ देखती हैं
सपने प्रेमिकाओं के
क्या देखती हैं
सधवाएँ और प्रेमिकाएँ?[1]

'रामचरितमानस' के बालकाडं में तुलसीदास बुरे संग से हानि और अच्छे संग से लाभ प्राप्ति की बात कहते हुए लिखते हैं:–

'गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा।।
साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं।।

पवन के संग से धूल आकाश पर चढ़ जाती हैं और वही नीचे की ओर बहने वाले जल के संग से कीचड़ में मिल जाती है।

'मैं धूल' शीर्षक मिनी कविता में कवयित्री इसी तथ्य को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए लिखती है:–

–'मैं धूल, उड़ती
तो मन फूल हो जाता।
मैं धूल
बैठ जाती तो
मन
धूल–धूल हो जाता।[2]

कविता अपने सांस्कृतिक परिवेश के साथ जुड़ी हुई है।

'दूसरा सप्तक' (प्रकाशन सन् 1951 ई॰) में श्री रघुवीर सहाय अपने वक्तव्य में लिखते हैं। –'विचार–वस्तु का कविता में ख़ून की तरह दौड़ते रहना कविता को जीवन और शक्ति देता है; और यह तभी सम्भव है जब हमारी कविता की जड़ें यथार्थ में हों।[3]

1– 'बादलों में आग' – पृ॰ 98
2– 'बादलों में आग' – पृ॰ 101
3– 'दूसरा सप्तक' – द्वितीय संस्करण–पृ॰–139

क्षमा कौल की कविताओं की जड़ें भी यर्थाथ में है। यह उन का अनुभूत सत्य है जो अभिव्यक्ति के साँचों में विविध आकार में ढल कर साकार हो उठा है। यहाँ पौराणिक सन्दर्भ, ऐतिहासिक घटनाएँ और दुर्घटनाएँ, कथा सूत्र और मिथकीय पात्र तथा प्रकृति के आकर्षक छविचित्र सब मिलकर उस यथार्थ को प्रेषणीय बनाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं हो रहा है कि यह उन का भोगा हुआ यथार्थ है– कहीं मधुर तो कहीं कड़ुआ, कहीं सुन्दर तो कहीं विकराल, कहीं ग्राह्य तो कहीं त्याज्य। इसी यथार्थ ने अनुभूति के स्तर पर उन्हें अपने अन्दाज़ में सोचने के लिये विवश किया है। कल्पना का सहयोग भी कम नहीं रहा और अभिव्यक्ति के स्तर पर शब्द प्रयोगों ने तो मख़मल के फ़िरन पर सोने की बारीक तार से कढ़ाई का काम किया है।

रघुवीर सहाय की एक प्रसिद्ध कविता है –'मेरा घर'। घर उन से छूट गया था लेकिन घर से जुड़ी अनेकों यादें आज भी उनके मनमस्तिष्क को महका रही हैं। इसी लिये वे चाहते है कि आज कोई उन के घर जाकर उन की माँ से मिले अथवा द्वार पर स्वागत की प्रतीक्षा में मुसकुराते फूल के अद्‌भुत सौन्दर्य को निहार ले। उस व्यक्ति को वैसा ही आनन्द प्राप्त होगा जैसा स्वयं कभी उन्हें प्राप्त हुआ था :–

सब वहीं रह गये
और मैं चल दिया
इन की स्मृतियाँ रह गई
वहीं मेरे घर
जाओ जिसे यात्रा में दो दिन
पड़ाव हो
या तो माँ मिलेगी
या उस की याद में
धूप में खिला फूल
मेरे घर रह जाना।[1]

क्षमा कौल 'दरबदर'–2 शीर्षक कविता में ईमानदारी के साथ इस तथ्य को स्वीकार करती है कि घर उस के दिमाग़ में चौकड़ी मार कर बैठ गया है,

1– 'नव भारती' – भाग–2, कविता–'मेरा घर' – रघुवीर सहाय

जाने का नाम भी नहीं लेता। कश्मीरी भाषा में एक कहावत है कि "घर्‌उ वन्दॅु हय घर्‌उ सासा बर्‌उ नेरय न ज़ा'न्ह"—

—'घर निछावर है तुझपर हज़ारों घर
घर छोड़ कर कभी नहीं जाता।'

यह कथन कवयित्री की मनोदशा के ठीक अनुकूल है। घायल की गति घायल जाने— आख़िर जिन के पूर्वज पिछले पाँच हज़ार वर्षों से जहाँ रहते आये हों, हरमुकुट गंगा के जल में जिन के पितरों के अस्थि अवशेष आज भी सुरक्षित है। मार्तण्ड का सूर्य मन्दिर, बुर्ज़हामा के ऐतिहसिक स्रोत और शारदा की साधना भूमि आज भी जिन के वैभवशाली अतीत की गवाही दे रहे हों, जिन के पूर्वजों में रत्नाकर (9वीं शती), रुद्रट (9वीं शती), आनन्द वर्धन (9वीं शती), अभिनवगुप्त (10वीं शती), क्षेमेन्द्र (11वीं शती), बिल्हण (11—12वीं शती) एवं कल्हण पण्डित जैसे मूर्द्धन्य विद्वान और रचनाकार शमिल हों उन की सन्तान आज दुष्चक्रों का शिकार बन कर और घर से बेघर होकर घर की याद में क्यों न तड़प उठे। यह तड़प कवयित्री को न केवल आकुल व्याकुल कर देती है अपितु सृजन के हेतु प्रेरित भी करती है :—

—'निकल जाता है जब वह
रवोज में घर की
छोटे बच्चे की तरह
पीछे मचलता हुआ
चला आता है घर
:
निकल आता है वह दूर
भुला कर घर
प्रतीक्षरत निर्रायों के लिए
ख़ाली करने को दिमाग़
तभी यकायक
क्या सोचते हो ?
कह उठता है घर
नहीं रवाली कर पाता है दिमाग़
चौकड़ी मार

सदा के लिये उस में
बैठ ज़ाता है घर।[1]

लल्लेश्वरी (14वीं शती), हब्बाख़ातून (1553–1605 ई०) और अरणिमाल (1737–1778 ई०) कश्मीरी जनमानस में शताब्दियों से विराजित हैं। तीनों महिलायें हैं, तीनों कवयित्रियाँ और तीनों उपेक्षामय वैवाहिक जीवन से संत्रस्त। तीनों ने किसी न किसी प्रकार क्षमा कौल की सर्जना को प्रभावित किया है। फ़ारसी के महापण्डित भवानी प्रसाद काचरू ज़िन्दगी भर कंचन को कांच समझते रहे और जब यथार्थ का बोध हुआ तो हाथ मलते रह गये। 'श्रावण की चमेली अरणि कली' में बदल चुकी थी। हब्बाख़ातून ने यूसुफ़ को बहुत चाहा लेकिन जब सन् 1586 ई० में मुग़ल बादशाह अकबर ने यूसुफ़ को छल से बन्दी बनाकर अपनी प्रेमिका से अलग कर दिया तो ख़ून के आँसू बहाती हब्बाख़ातून यों विलाप करती रह गई :–

–'श्रावण शीन ज़न ब्व गलान आयस
यावनुँ फोजि सै ही।[2]
(श्रावण में हिम सहश पिघल रही हूँ
जूही के फूल सहश मुसकाता यौवन मेरा।)

विक्षिप्तअवस्था में यही विलाप क्षमा कौल की इन काव्य पंक्तियों में दूर प्रवाहित पहाड़ी नद की हल्की गर्जना के समान प्रतिध्वनित होता है :–

–'मैं ने किया है
प्रेम जितना बड़ा अपराध।
प्रेम अपराधी करते हैं।
पतित पापी साधारण लोग करते हैं।
दलित पददलित इत्यादि करते हैं।
प्रेम अकेले और विक्षिप्त लोग करते हैं।'[3]

'एक कवि प्रेम करता हुआ 'शीर्षक कविता में कवयित्री लिखती है:–

1– 'बादलों में आग' – पृ० 50
2– 'कुलयात हब्बाख़ातून' – अकादमी प्रकाशन सन् 1995 ई०–पृ० 159
3– 'बादलों में आग' – पृ० 59

—'प्रेम ही जड़ है समस्याओं की।
इसी कारण उस का घर छूटा है।
शरणार्थी शिविर है
और इस निदाघ में भी
स्मृति का स्वर्ग – सा शिशिर है।'[1]

लल्लेश्वरी के दो चर्चित वाखों को समसायिक सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की सफल योजना 'ललद्यद' शीर्षक कविता में की गई है। वाख हैं:—

अ) लतन हुन्द माज़ लास्योम वतन
अकी हॉवनम अकिची वथ
यिम् यिम् बोज़न तिम कोनुँ मतन
ललि बूज़ शतन कुनी कथ।[2]
(तलवों का माँस चिमट गया पथ के साथ
एक ने दिखाया मार्ग एक का
क्यों न हों उन्मत्त सुन के जन
लल्लेश्वरी ने सुनी सौ की बात एक)

आ) आयस वते गयस न वते
सुमन सोथि मंज़ लूस्तुम दोह
चन्दस वुछुम तुँ हार न अथे
नावि तारस दिमुँ क्या बो।[3]
(जिस पथ से आई जा न सकी उस पथ से
दिन ढल गया जब थी बान्ध पर ही
जेब में न थी फूटी कौड़ी
पार उतरने के लिये दूँ क्या मैं।)

1— 'बादलों में आग' — पृ॰ 64
2— 'ललदद्य' — प्रोफ़ेसर जियालाल कौल — अकादमी प्रकाशन सन् 1975 ई॰ — पृ॰ 126
3— 'ललदद्य' — प्रोफ़ेसर जियालाल कौल — अकादमी प्रकाशन सन् 1975 ई॰ — पृ॰ 58

क्षमा कौल के चिन्तन की जड़ें अपनी उर्वर सांस्कृतिक भूमि में गहराई में उतर गई हैं। यही मूल इस उर्वर भूमि के वक्ष से जीवन रस ग्रहण कराने में अहम भूमिका निबाहता है और कहीं प्रेषणीयता में सहभागी बन कर रचना को देसी गुलाबों की सुगन्ध से महका देता है। चार पंक्तियों के प्रत्येक वाक् (वाख) में लल्लेश्वरी ने लौकिक–अलौकिक आधार भूमि पर कई गहन गूढ़ तथ्यों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। यह तो कागद लेखी नही आँखन देखी बात है। मामला पार उतरने का है। संकल्प की सिद्धि का है। ऋषि भूमि तो पर्याप्त रक्त स्नात हो चुकी है। आसुरी शक्तियों के दमन और न्याय की पुनर् स्थापना का मामला है। खोये हुए स्वत्व की पुनः प्राप्ति का है। यही कारण है कवयित्री स्थिति अवलोकन करते हुए लल्लेश्वरी के वाखों को नये सन्दर्भों के साथ जोड़ते हुए लिखती हैः–

–' छिल कर तलवों का मास
मिल गया है सड़कों की रोड़ी से
जेब में नही है खोटी दमड़ी
दे रहे हैं नाविक को शुल्क
छील कर क्षपना मांस
छील ले वह पूरा–पूरा
उतर जाना है हमें पार
बनी रहना
अभी बस
आ रहे हैं हम।'[1]

स्वप्न भंग की स्थिति में आज कश्मीर वासी अपने पड़ोसी के उजड़े चमन को देख कर असमर्थ अवस्था में हताश दिखाई देता है। क्यों न हो उसे तो दस दिनों में आज़ादी दिलाने का आश्वासन दिया गया था। तेरह साल गुज़र गये जाने कितने सपने बिखर कर खण्ड खण्ड हो गये।
क़बरिस्तानों की आबादी बड़ रही है और श्मशान घाटों से धुआँ लगातार उठ रहा है। कवयित्री अपने मानस की पीड़ा का दबाते हुए व्यंग्य के तेज़ नश्तर से शॉल वाले का हृदय चीरते हुए पूछती हैः–

1– 'बादलों में आग' – पृ॰ 106

—'कहो शॉल वाले
कैसा लगता है लाल चौक
हब्बाकदल
कितनी गिरी बर्फ़
इस वर्ष
काली बर्फ़ ?
इस वर्ष।
त्राहि त्राहि।
खुदाया खुदाया ।
ओ हमशीर।
रो रहा है
तुम्हारे बिना
कश्मीर।[1]

स्वप्न भंग की स्थिंति में व्यथा का गहन एहसास स्वंय व्यथा के लिये भी सह्य न रहा।

समसामयिक जीवन की विसंगतियों का निरन्तर सामना करते हुए कवयित्री विभिन्न मनः स्थितियों की पीड़ा को झेलने के लिये विवश हो जाती है। शहर शहर घूमते घूमते वर्षों महानगरी जीवन की धौड़ धूप में स्वंय शरीक होकर उन्हें कई स्थितियों से गुज़रना पड़ा। देश के चोर–चापलूस रंग बदलते राजनीतिक ठगों की व्यवहार कुशलता, समाज सेवकों और सेविकाओं की नाटक बाज़ी, चन्द बुद्धि जीवियों का बौद्धिक दारिद्र्य, देश का आर्थिक पराभव, रक्तपात–हिंसा, दो नम्बर का काम, पैसा–पैसा–पैसा और पैसा है प्रभुनाम, नारी शोषण, निराश बेरोज़गार शिक्षित युवक समाज, अपने ही देश में शरणार्थी बन कर रहने की पीड़ा, अस्तित्व रक्षा की समस्या, मृत्यु बोध, पराजय बोध, मानसिक कुंठा और आक्रोश, इलकत्रानिक माध्यमों द्वारा वातावरण को प्रदूषित करने की सुनियोजित योजना और प्रिंट मीडिया पर करोड़पतियों का एकच्छत्र राज्य जाने कितनी विकट और भीषण स्थितियों से जूझने के लिये आज का भारतवासी, झोपँड़ियों में रहने वाला वेतन भोगी अथवा श्रमजीवी, किसान अथवा सैनिक, फेरी करने वाला

1— 'बादलों में आग' — पृ० 97

अथवा ठेला ठेलने वाला विवश हो रहा है। वह लगातार विदेशी साज़िशो का शिकार बन रहा है और सरकार अपनी अकर्मण्यता को छिपाते हुए तुरन्त कड़े क़दम उठाने का टेप सरकारी प्रसारण माध्यमों से प्रसारित करवाती है।

इन समस्त स्थितियों का एक हसास रचनाकार पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है फलतः आक्रोश, विद्रोह, निराशा, अस्तित्व रक्षा की चिन्ता, मृत्यु बोध, अप्रतिबद्धता की पीड़ा जाने कितने रंगीन अथवा रंगहीन तन्तुओं से वह अपनी कविता का तानाबाना बुन लेता है। अस्तित्व की शून्यता अथवा निरर्थकता का गहन एहसास कवयित्री क्षमा कौल को भी पीड़ित कर रहा हैः–

–'क्या थी मैं
अथाह असत्य की पोटली
अदृश्य हाथों में
क्या थी मैं
धूल चढ़ी रंगमंचपर
क्या थी मैं
चतुर, द्वेष गट्ठर
ईर्ष्या–पुंज।'[1]

आज का राजनेता और उस की अलंकार प्रधान भाषा–
आश्वासन के लड्डू– टेक सेर भाजी टेक सेर खाजाः–

–'जब हम आए
तो सीधे राजा से मिले
उस ने कहा लो अब तुम हो गए
ऐतिहासिक
राजा इस लिए राजा है
क्योंकि उस के पास है यह शब्द
हम हुए ऐतिहासिक क्योंकि
हम इस शब्द से तिलमिलाए नही।'[2]

1– 'बादलों में आग' – पृ॰ 63
2– 'बादलों में आग' – पृ॰ 18

गहन पराजय बोध

—' मैं जलूँ भी, मैं हँसू भी
मैं अकड़ कर लड़ पड़ूँ
अग्रिम पराजय का
अंगूरी आनन्द पीकर
बेधता है यह अट्टहास
मेरे खाते में है केवल
त्रास के उल्लास।'[1]

ऐशिया महाद्वीप में छाये अणतंक का हाहाकार और धर्मान्धता का भीषण प्रकोपः—

—' इन्हीं गलियो में होती वर्षा
आगामी बारूद—नमूनों की
लार टपकाती घूमती
विदेशी टोपियाँ।
चाँदमारियों में व्यस्त पड़ोसी
दिलो—दिमाग़
किसी एक ने भी न की
मुख़बरी आकर
मनुष्यता के पास।
ईश्वर के बन रहे थे
दनादन घर
आत्मरक्षा में।[2]

जीवन में जब जीने के सब विकल्प छिन जाते हैं अथवा किसी निर्मम पाषाण हृदयी के सान्निध्य में जब न जीना सम्भव हो और न मरना तब अन्तरमन की वेदना व्यक्त होने के लिये यों छटपटा उठती हैः—

—' विकृत अनुक्रियाओं की शिकार
खड़ी रही
पत्थर के सान्निध्य में।

1— 'बादलों में आग' — पृ॰ 42
2— 'बादलों में आग' — पृ॰ 43

तुम्हें मौन नहीं मरना
तुम्हें चीख़ना भी नही
तुम्हें भीख नहीं खानी
तुम्हें भूख से नहीं मरना
तुम्हें पेट भी नहीं भरना।'[1]

आक्रोश की अभिव्यक्ति उन लोगों के प्रति जिन में जीवन और जीवन मूल्यों के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं। जिन के बुद्धि चातुर्य के सम्मुख कभी हमें घुटने टेकने के लिये विवश होना पड़ता है –

–'बुद्धिमानों की नशेड़
भाषाओं के बीच
रिंद मेरे शब्द
कैसे गाएँ तुम्हारी झूठी प्रशस्ति।
कुलबुला रहे हैं
तुम्हारे हर अंग पर कीड़े
कैसे गाएँ तुम्हारी झूठी प्रशस्ति
उन के वेश्या–शब्दों की तरह।
चाहो तो तुम मारो कोड़े ही
कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता अब।'[2]

प्रस्तुत संग्रह में कवयित्री की दो रचनाएँ विशिष्ट भी हैं और महत्त्वपूर्ण भी। आधुनिक पंजाबी भाषा के प्रसिद्ध कवि अवतार सिंह 'पाश' आतंकवादियों की गोलियों के शिकार हुए। स्वर्गीय 'पाश' ने अपनी आत्मा की आवाज़ को कुचलने से अथवा नकारने से साफ़ इंकार किया था। वे अपनी रचनाओं के द्वारा भीषण नर संहार पर निरन्तर क्षोभ और आक्रोश व्यक्त करते रहे। फलतः अपने ही प्राणों की आहुति देकर उस ने नर पिशाचों के मुखपर कालिख पोत दी। अवतार सिंह 'पाश' के लिए शीर्षक कविता में कवयित्री शोकाकुल मुद्रा में अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करते हुए लिखती हैः–

1– 'बादलों में आग' – पृ॰ 56
2– 'बादलों में आग' – पृ॰ 67

—'तब मूक विवशता में
थूक दिया मैं ने भी मृत्यु पर
x x x x
वाह। तुम भी क्या मरे
जन्म लेने की तर्ज़ पर।'[1]

दूसरी कवितां रुसी कवयित्री मरीना त्स्वेतायेवा पर लिखी गई है। मरीना ने अपने रचना कौशल और रोमानी काव्य अभिव्यक्ति से कवयित्री को रोमांचित किया है। त्स्वेतायेवा की याद में लिखी गई इस कविता में कवयित्री मरीना को अद्‌भुत शक्ति स्रोत मान उस की सर्जनात्मक प्रतिभा से चन्द ऊर्जस्वी कण समेट लेती है और उन्हें अनमोल समझ सुरक्षित रखना चाहती हैः—

—'मैं जल रहा हूँ
भयंकर शिला खण्डों के बीच
कौंरव में दबाए
तुम्हारी कुछ धड़कनें
सात ठगों के ख़ज़ानें की तरह
काई नही जानता
इस अजीब—सी मेरी गोपनीय ख़ुशी को।'[2]

निष्कासन, निर्वासन, विस्थापन अभिशाप बन कर कवयित्री की सोच को नित नये साँचों में ढलने के लिये प्रेरित करता है। लगातार इस यातना को सहते हुए अनुभूति के स्तर पर सृजन की प्रक्रिया में यह सोच अपने गहरे नुकूश पीछे छोड़ देता है। ज़िन्दगी की इस ट्रेजिडी से अपने आप को अलग करने में वह असमर्थ है। कुहासा धीरे धीरे छंट रहा है। स्वप्न भंग अथवा मोह भंग की स्थिति में भूत और वर्तमान समानान्तर रुप में एक दूसरे के सम्मुख खडे हो जाते हैं। इस में सन्देह नहीं कि काव्य साधना की हंडिया में सारे भाव निरन्तर संर्घष के ताप से तपकर कुदंन हो जायें गे क्योंकि मोह भंग के परिणाम स्वरूप जनमन राख नहीं होता, विशेष बन जाता है। एक शहर से दूसरे शहर में पहुँचकर यथार्थ का सामना करते

1— 'बादलो मे आग' — पृ॰ 85
2— 'बादलों में आग' — पृ॰ 88

हुए मोहभंग ही तो हुआ। इस मोह भंग की स्थिति में दोनों शहर आमने सामने उपस्थित होकर भूत के वैभव और वर्तमान की विवशता भरी अकिंचनता का एहसास एक साथ दिलाते है :–

–'एक शहर में जितना बुना था प्रकाश
दूसरे शहर में उतने अन्धे होकर
एक शहर में जितने कटे सिर
दूसरे शहर में उतनी तस्वीरें टाँग कर
एक शहर में जितने लिखे थे गीत
उन में आँसुओं की एकपूरी वितस्ता मिला की
एक शहर में जितना किया था प्यार
उस से कई गुना अधिक तड़पकर।'[1]

यहाँ और वहाँ में परस्पर पर्याप्त अन्तर है। यह अन्तर शहर और गाँव तक ही सीमित नहीं। दूरियाँ मजबूरियाँ बन कर रुला देने की स्थिति को जन्म देती हैं। कहाँ सूरज की गुनगुनी किरणें और कहाँ किरणों की दाहक जलन। कहाँ यम्बरज़ल की मुस्कान और कहाँ तपते–उबलते तारकोल का सड़कों पर बहाव। लेकिन यहाँ की तपिश से ही वहाँ की ठंडक की मधु स्मृति रह रह कर मानस पटल पर बिजली के समान कौधं उठती है।लगता है कि आज यम्बरज़ल भी हमारे लिये शोकाकुल है –

–'सूरज की गुनगुनी किरणें
रहती महीनों वहाँ
जोकि टिकती नहीं
सप्ताह – भर भी यहाँ।
निकलती धीरे धीरे यंबरज़ल
सड़कों के मुहानों
चराहगाहों मज़ारों
फाड़कर तारकोल का सीना
सुपुत्र–सा धैर्य रखता सूर्य
सारा ताप उतार कर यहाँ
सारी हड़बड़ी निथार कर यहाँ

1– 'बादलों में आग' – पृ॰ 35

पसरता
जैसे पसरा करती मैं।'[1]

कवयित्री के कृशगात में एक नाज़ुक कोमल हृदय भी तो है जो दुख के झंझावात में तड़प भी उठता है, रो भी उठता है, अधीर भी हो उठता है, परेशान भी हो जाता है। वह चीख़ भी उठती है, कराह भी उठती और कभी कभी विद्रोह भी करती है। यह सब स्वाभाविक है क्योंकि कवयित्री मध्यवर्गीय जीवन जी रही है और इस वर्ग विभजित समाज में मध्यवर्ग की अपनी सीमाएँ हैं। घर, परिवार और समाज के भीतर रह कर तथा मध्यवर्गीय जीवन जी कर वह नित्य नये अनुभवों का सामना करते हुए बख़ूबी अपने उत्तरदायित्व को निबाहती है। उसे भी हम सब के मध्य जीना है अथवा जीने की मजबूरी को सहना है। फलतः सर्जन की प्रकिया में ये अनुभव रंग भरने के लिये उत्साहित करते हैं यहाँ मीठे और तीखे़ का अन्तर मिट जाता है और विशुद्ध अनुभूति कल्पना की बैसाखियों को त्याग कर विचार और चिन्तन से महिमा मंडित होकर आकार ग्रहण करती है। हर एक इस भँवर से बाहर नहीं निकल पाता। वे ही किनारे लग जाते हैं जो दृढ़ संकल्प के धनी होते हैं। जिन में जीने की रसीली इच्छा है चाहे विष का ही रसपान क्यों न करना पड़े। अपनी सांस्कृतिक विरासत में कवयित्री को लल्लेश्वरी, अरणिमाल और हब्बाख़ातून से प्रेरणा मिली है और इस सूची में यदि मैं महादेवी वर्मा को भी जोड़ हूँ तो अनुचित नहीं होगा :–

–'एक घड़ी गा लूँ प्रिय मैं भी
मधुर वेदना से भर अन्तर;
दुख हो सुखमय सुख हो दुखमय;
उपल बनें पुलकित से निर्झर;
मरु हो जावे उर्वर गायक!
गा लेने दो क्षणभर गायक!'[2]

अपने संकल्प को दोहराते हुए कवयित्री लिखती है :–

1– 'बादलों में आग' – पृ॰ 32
2– 'नीरजा' – महादेवी वर्मा – प्रथम संस्करण –संवत् 2013–पृ॰ 37

—'बेधता है यह अट्टहास
मेरे खाते में है केवल
त्रास के उल्लास।
कँपकपाए धरती
मैं तो जिऊं गी
मैं अनन्त के अन्ततक
विष सुधा का पिऊं गी।'[1]

कवयित्री एक स्वस्थ आशावादी दृष्टि से सम्पूर्ण घटनाचक्र को निहारते हुए पुनः देश लौटने की बात कहती है। वह इस तथ्य से भलीभाँति परिचित है कि जो कुछ हुआ है या हो रहा है वह सब पहली बार तो नहीं हुआ है। पण्डितों का कई बार देश निष्कासन इतिहास की दमघौंटू सचाई है। एक समय तो केवल ग्यारह परिवार ही शेष रह गये थे। सांस्कृतिक कठोराघात के बुतशिकनी दौर में इंसानियत काँप उठी थी। ज़िन्दा लाश की तरह जीवन जीने की विवशता सह कर पण्डित पुनः अपने वतन की ओर लौटें हैं। इतिहास की इस सचाई को झुठलाया नहीं जा सकता। कवयित्री ज़हरीले यथार्थ के जलावर्त में हिचकोले रवाते हुए भी भविष्य के प्रति यों आशावान दिखाई देती है :—

—'अभी भी तो ख़ून में तुम भी हो
ग़मज़दा
हम भी है
गुमशुदा
ऐ वतन आएँ गे हम
एक दिन
अपनी—अपनी
कैदों से बाइज़्ज़त बरी हेकर
ऐ वतन
आएँ गे हम।'[2]

1— 'बादलों में आग' — पृ॰ 42
2— 'बादलों में आग' — पृ॰ 12

अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रस्तुत संग्रह में एक विशेष बात देखने को मिलती है– शुद्ध, सहज, तद्भव कश्मीरी शब्दों का हिन्दी कविता में प्रयोग। यद्यपि कवयित्री ने इन शब्दों के साथ कहीं कहीं संदेहास्पद पाद टिप्पणियाँ भी दी हैं तथापि इन अर्थ गर्भित शब्दों ने हिन्दी कविता को महिमा मंडित किया है इस में कोई सन्देह नहीं। अगर स्वर्गीय फणीश्वर नाथ रेणु भोजपुरी, मैथिली, मगही अर्थात् बिहारी भाषा के शब्दों को सीमा के बाहर जाकर हिन्दी भाषा में प्रयोग कर सकते हैं और यही उन की आँचलकता का सौन्दर्य बन जाता है तो क्षमाकौल का क्या दोष। वस्तुतः क्षमा इन शब्द प्रयोगों से हिन्दी–प्रदेश के जन मानस को भाषा की नई सम्भावनाओं से परिचित कराती है। बनारसी हिन्दी में अथवा रसीली ब्रजभूमि की भाषा में या दिल्ली–रामपुर–मुरादाबाद की खड़ी बोली में यदि कश्मीरी शब्द–प्रयोगों के मौक्तिक जड़ जायें तो राष्ट्रभाषा के राष्ट्रीय कलेवर का गौरवशाली स्वरूप निखर उठता है, मलिन नहीं होता। क्षमा की कविताओं में निम्नलिखित शब्द–प्रयोग इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं:–

अ) आएँ गे हम लौट कर ऐ वतन
बिछाँए गे *नम्द* आँखों के (पृ॰–12)

आ) हाथ आता कोई *फिरन*
कोई दामन (पृ॰–23)

इ) निकली धीरे *यम्बरजल*
सड़कों के मुहानों (पृ॰–32)

ई) पंचस्तवी रख आई हूँ ताक पर
बाँधो *तरंग* (पृ॰–108)

उ) सारा शिशिर करूँ गा तपस्या
कश्यप – सी (पृ॰–25)

ऊ) मिथक :
कि सब कुल्हाड़ियाँ, कट्टे, गँडासे,
चाकू *शांल्टेंग* में दफ़न हैं। (पृ॰–60)

ए) *'नुंद'* आए
अपने यारों की चादरें उढ़ा दी (पृ॰–75)

ऐ) गाँव की कुल्या
नदी, उल्लर, *डल* (पृ॰–128)

ओ) कहो *शॉलवाले*
कैसा लगता है *लालचौक*
हब्बाकदल (पृ॰–97)

कविताओं में कई भाषा सम्बन्धी प्रयोग आकर्षक एवं सजीव बन पड़े हैं। ये प्रयोग क्षमा कौल के निजी मौलिक प्रयोग हैं और उस की बालिग़ अभिव्यक्ति की गवाही दे रहे हैं। चन्द उदाहरण द्रष्टव्य हैं:–

अ) 'इस कारागार से
जैसे दिख रहा है
वर्दी पहना ज़ख़्मी चिनार' (पृ॰–87)

आ) 'सुबह जिन का खिलना तय है
तैयारी में जुटें गे गुलाब।' (पृ॰–31)

इ) 'एक शहर में जितने लिखे थे गीत
उन में आँसुओं की एक पूरी वितस्ता मिलाकर '
(पृ॰–35)

ई) 'रोशनी के कद्र–दाँ
पका कर खाँए रोशनी। (पृ॰–80)

उ) 'आकारों के लिए
भटक रहे हैं
बोल पाने के लिए
तपे तवे पर
ज़िन्दा मछलियों से शब्द।' (पृ॰–67)

ऊ) 'बनती–बिगड़ती सिलवटें
खींच–खींच ठीक करती बार–बार
अस्थिरता को सहज में तहाती' (पृ॰–57)

ए) 'ओढ़ कर बर्फ़ का लिहाफ़
भीतर करता प्रेम का ध्यान' (पृ॰–24)

ऐ) 'एक विराट नदी है पास
पर पीना है पानी
क़तरा–क़तरा
खोद कर चश्मे।' (पृ॰–21)

ओ) 'घर बहुत ज़ालिम है
न बनाना दोस्तो
घर तुम से
ज़माने से
बड़ा शातिर है, आलिम है दोस्तो।' (पृ॰–62)

औ) 'कैसे गाँए तुम्हारी झूठी प्रशस्ति
उन के वेश्या –शब्दों की तरह।' (पृ॰–67)

प्रस्तुत काव्य संग्रह में संगृहीत कुछ रचनाओं में प्रतीकों की योजना आकर्षक बन पड़ी है। शब्द अपने परम्परागत रुढार्थ को व्यक्त करते हुए भी सामूहिक रुप से किसी ऐतिहासिक तथ्य अथवा घटना चक्र का सांकेतिक बोध भी कराते हैं। मैं इस बात को स्पष्ट करना चाहता हूँ कि कवयित्री अपनी रचनाओं से अपने आप को अलग नहीं रख पाई है। यह उन का दोष नहीं है इसी में तो रचनाओं का समस्त सौन्दर्य निहित है। 'हम तकिए थे' यदि इस रचना को लें तो यह बात स्पष्ट होती है कि कवयित्री ने तकिए को एक विशेष घटना चक्र का प्रतीक बना कर अर्थगर्भित किया है। घर के भेद जब तक घर के भीतर रहते हैं तो तकिए के भीतर रुई के समान सुरक्षित माने जाते हैं लेकिन जब रुई बाहर आती है तो राज़, राज़ न रह कर तमाशा बन जाता है। यह एक सचाई है कि आज धूल, आँधी, बारिश, ताप और साँप ही हमें मुक्ति दिला रहे हैं। लुटे हुए स्वप्नों और मिटी हुई आकांक्षाओं की राख खुले मुँह तकियों में डाल कर हम सरेराह मातमकदः हैं। इसी लिये कवयित्री लिखती है:–

–'थैलों में भरजाता है कभी कभार
अधमरा–अधबचा स्वप्न।
हम उल्टा कर
झाड़ देते हैं।
वैसे भी इन का अब क्या बिगड़ना
भीतर थोड़े बची है
कोई रुई
कोई मन।'[1]

1– 'बादलों में आग' – पृ॰ 37

बीसवी शताब्दी के अन्तिम दशक में लाखों भारत वासी अपना शहर छोड़ने के लिये विवश हुए। अपने ही देश में शरणार्थी बन कर अधर में लटकते रह गये। लेकिन शहर की याद प्रवास में भी तड़पा देती है और कवयित्री निर्वासन की पीड़ा को सहते हुए चिन्तन के दरीचे से सिर बाहर निकाल कर अपनी ही जन्मभूमि से उत्सुकता पूर्वक पूछती है:–

–'न दौड़ मेरी रगों में
इस क़दर
मेरे शहर
:
सच तो बोल फिर
क्या हम भी दौड़ते हैं
तेरी रगों में इस क़दर?[1]

मनचले मौसम में घर की याद बहुत सताती है। प्रकृति के प्रतिनिधि अंश भी आज हमारे घर के सूनेपन पर उदास होकर लुटे पिटे घर को इकटक ताक रहे हों गे। वस्तुतः रुला देने वाली घर की मधुर स्मृति कवयित्री को रह रह कर सोचने के लिये विवश कर देती है। जब घर जी रहा था तो प्रकृति उस की रौनक़ में चार चान्द लगा देती थी, अब घर श्मशान बन चुका है मात्र ईंटों का ढूह। खिड़कियाँ, द्वार, फर्शीछत, अल्मारियाँ, टिन की चादरें सब एक एक करके साथ छोड़ चुकी हैं घर का। इस लिये घर के हमसाया चिनार का अंगभंग हुए घर पर लम्बी लम्बी साँसे लेना स्वाभाविक ही तो है। फिर भी कश्यप के समान तपस्या का दृढ़ संकल्प लिये वह खड़ा है कल की प्रतीक्षा में:–

–' धूप ने सुनहराई होगी
मेरे घर की छत
मौसम मनचला–सा होगा
:
चिनार अब ले रहा होगा
अंगडाइयाँ
उतर कर जड़ों में
लेगा समाधि

1– 'बादलों में आग' – पृ॰ 11

पतों को कह कर विदा
याद करता होगा हमें।
लेकर लम्बी लम्बी साँसें
सारा शिशिर करुँगा तपस्या
कश्यप– सी
धूप को ओढ़ कर इस क्षण
बैठा होगा घर
भूखा–प्यासा–ख़ाली.............. ।'[1]

सन् 1996 ई॰ में प्रकाशित प्रसिद्ध गद्य रचना 'समय के बाद' के कारण क्षमा कौल पर्याप्त चर्चित रही हैं। पुरस्कृत भी हुई। कई लेखकों ने 'समय के बाद' पर समीक्षात्मक रचनाएँ कई भाषाओं में लिखी हैं और प्रकाशित भी हुई हैं। महिला गद्य लेखिका ने आज अपने काव्य संग्रह के द्वारा एक सशक्त कवयित्री होने का प्रमाण भी दिया है यह हमारे लिये गौरव की बात है।

आज जीवित शक्तिहीन हो चुके हैं। युगीन जीवन की विसंगतियो के दबाव से चेतना भी उन का साथ छोड़ रही है। आज भूत वर्तमान पर प्रहार कर रहा है। मुर्दे जीवितों पर चोट कर रहे हैं। सम्भव है मुर्दे ही कुछ कर पायें क्योंकि वे हमारे लिये पीछे छोड़ चुके हैं अनुभवों का अमूल्य भाण्डार। अपने धनुष की प्रत्यंचा पर व्यंग्य का तीखा और चुभता हुआ तीर साधते हुए कवयित्री लिखती हैः–

–'बिना शरीर
हम उठा कर कहाँ रखें
सूखा काठ बेशक़ीमती
जीवितों !
मृतक तुम्हारे लिए
बहुत कुछ करना चाहते हैं
तुम्हारे लिए
अपने दिनों का
बेशक़ीमती काठ
स्वाहा करना चाहते हैं।'[2]

1– 'बादलों में आग' – पृ॰ 25–26
2– 'बादलों में आग' – पृ॰ 80

21वीं शताब्दी का कम्प्यूटरी युग और अपने ही वतन के साथ देश द्रोह। इस मानव सृष्टि में कुछ भी तो असम्भव नहीं है। आज हम जिस वस्तुस्थिति की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं सम्भव है कल उसी का सामना करना पड़े। कल किस ने देखा है ? और इस कल के गर्भ में यर्थाथ अपनी समस्त सम्भावनाओं के साथ निहित हैः–

–'पहले देश को कहते थे
माँ
अब सोचते हैं कि शायद
सौतेला बाप हो।
पहले वे, हद होती तो
करते कल्पना मृत्यु की।
अब वे बेहद हत्याएँ
कर रहे हैं
अपनी–अपनी कल्पनाओं की।'[1]

निष्कर्ष में केवल इतना कह कर मैं अपनी बात समाप्त कर दूँगा कि क्षमा कौल की कविताओं में कश्मीर जी रहा है, तड़प रहा है। यहाँ का भव्य सांस्कृतिक इतिहास, लोक विश्वास, परम्पराएँ और मान्यताएँ, वेशभूषा एंव खानपान, पेड़–पक्षी और लता–पुष्प हिन्दी जन मानस को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। 20 वीं शताब्दी के मानव इतिहास की एक दुखद घटना की सम्पूर्ण व्यथा इस संग्रह के माध्यम से मुखर हो उठी है। निस्सन्देह समकालीन हिन्दी कविता में सर्जन की नवीन सम्भावनाओं को तलाश कर कवयित्री ने लीक से अलग हट कर सामान्य से विशेष बनने का प्रयास किया है। मैं ने अपने एक प्रकाशित शोघ–पत्र में विस्थापन को समकालीन हिन्दी कविता की एक सशक्त काव्य–प्रवृत्ति के रूप में स्वीकारा है। कवयित्री क्षमा कौल इसी प्रवृत्ति–पथ का एक मील–पत्थर है।

---- *** ----

1– 'बादलों में आग' – पृ॰ 51

प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार
प्रोफ़ेसर रत्नलाल 'शान्त'

आधुनिक कश्मीरी एवं हिन्दी साहित्य के इतिहास में कश्मीर घाटी के भीतर अध्यापकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कश्मीरी साहित्य में सर्वश्री अब्दुल अहद आज़ाद, मास्टर ज़िन्द कौल, दीना नाथ कौल 'नादिम', प्रो॰ श्रीकंठ तोषखानी, प्रो॰ मुही उद्दीन हाजिनी, प्रो॰ पृथ्वीनाथ 'पुष्प', प्रो॰ रहमान राही, प्रो॰ गुलाम नबी 'फ़िराक़', प्रो॰ मरग़ूब बानहाली, प्रो॰ हरिकृष्णा कौल, अर्जुनदेव मजबूर, पृथ्वी नाथ कौल 'सायिल', प्यारे हताश आदि तथा हिन्दी साहित्य में सर्वश्री मास्टर ज़िन्द कौल, प्रो॰ पृथ्वी नाथ 'पुष्प', प्रो॰ ओमकार कौल, प्रो॰ शिबन कृष्ण रैणा, पृथ्वी नाथ 'मधुप' आदि प्रबुद्ध अध्यापकों ने शिक्षण कार्य के साथ साथ सर्जनात्मक साहित्य के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है। सर्जन के स्तर पर कई अध्यापक बन्धुओं ने दोनों भाषाओं के साहित्य में मौलिक प्रयोग किये हैं। इन्हीं में प्रोफ़ेसर (डॉ॰) रत्नलाल 'शान्त' एक हैं।

'शान्त' जी पिछले चालीस वर्षों से सर्जन के क्षेत्र में सक्रिय हैं और समसामयिक युग में आज के जागरूक पाठक को अपनी बहुमुखी प्रतिभा से निरन्तर प्रभावित एवं प्रेरित कर रहे हैं। "शान्त" जी का जन्म 14 मई सन् 1938 ई॰ को श्रीनगर में हुआ। स्नातक स्तर तक शिक्षा श्रीनगर में ग्रहण की , तत्पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के एक मेधावी छात्र के रूप में उन्हें ने एम.ए. हिन्दी की परीक्षा पास की। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में ही वे कई महान विद्वानों, लेखकों एवं कवियों के सम्पर्क में आये जिन में सर्वश्री डॉ॰ रामकुमार, डॉ॰ रघुवंश, डॉ॰ धर्मवीर भारती, डॉ॰ जगदीश गुप्त एवं डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्हीं गुरूजनों के निकट रह कर शान्त जी को चिन्तन और सर्जन के क्षेत्र में नई दिशा मिली। इसी विश्वविद्यालय में आप ने डॉ॰ फिल् (डॉक्टरेट) की उपाधि के लिये शोधकार्य भी सफलता पूर्वक पूरा किया।

'शान्त' जी का व्यक्तित्व बहुमुखी है। आज वे एक कुशल शोधकर्ता, सशक्त गद्यलेखक, अनुभवी सम्पादक, समर्थ अनुवादक, चर्चित अध्यापक, लोकप्रिय कहानीकार और सब से बढ़ कर हिन्दी के जाने माने कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। शान्त जी दो भाषाओं – कश्मीरी एवं हिन्दी – में एक साथ साहित्य–साधना में लीन हैं। हिन्दी में गद्य एवं पद्य अभिव्यक्ति के दोनों साधनों को वे अपना रहे हैं जब कि कश्मीरी में केवल गद्य (कथात्मक एवं आलोचनात्मक) तक ही उन का रचना–संसार सीमित रहा है।

♣

कश्मीरी और हिन्दी दोनों भाषाओं में 'शान्त' जी ने विविध विषयों पर एक सौ से भी आधिक निबन्ध रचनाएँ लिखी हैं। शेध–पत्रों की संख्या साठ के आसपास है। ये रचनाएँ देश की विभित्र पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं जिन में 'भाषा' (दिल्ली) 'शीराज़ा' (हिन्दी और कश्मीरी), 'कोशुर समाचार' (दिल्ली), 'वितस्ता', 'क्षीरभवानी टाइम्स' (जम्मू) आदि उल्लेखनीय हैं। 'शान्त' जी के चर्चित निबन्धों में 'कश्मीर की लो़क संस्कृति', व्यक्तित्व की गरिमा और ईलियट', 'अस्तित्ववाद का कुहासा', 'कश्मीरी रंगमंच और नाटक', 'समकालीन हिन्दी कविता में वामचेतना', 'कवि व्यक्तित्व अभिव्यक्ति की समस्या', जम्मू कश्मीर में हिन्दी गद्य', 'कश्मीर का निर्वासन साहित्य' तथा कई अन्य रचनाएँ कथ्य और शैली की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं। न केवल सामयिक सन्दर्भें को समझने में अपितु अपनी सांस्कृतिक पहचान की तलाश में भी ये रचनाएँ पर्याप्त सहायक सिद्ध होती हैं। अभिव्यक्ति की दृष्टि से इन का शोख़ आंचलिक रंग तथा नपे तुले शब्दों का व्यवहार निरसन्देह लेखक की रचना क्षमता को रेखांकित करता है।

♣

कश्मीरी कहानी को सशक्त साहित्य–विधा का रूप पदान करने में सर्वश्री अख़्तर मही–उ–द्दीन, अलीमुहम्मद लोन, हृदय कौल भारती, अवतार कृष्णा 'रहबर', बंसी 'निर्दोष', तथा हरिकृष्णा कौल के साथ साथ 'शान्त जी' का योगदान भी कलात्मक प्रयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। आप की मौलिक कश्मीरी कहानियों का एक संग्रह 'अछरवालन प्यठ

कोह' (पर्वत बरौनियों पर) प्रकाशित होचुका है। सन् 1967 ई० में 'शान्त' जी की एक कहानी 'छ़ायिगित' (लुका छिपी) 'शीराज़ा' पत्रिका में प्रकाशित हुई। प्रयोगात्मक स्तर पर यह कहानी साठोत्तरी युग के बदलते परिप्रेक्ष्य में अनुभूत सत्य को अभिव्यक्त करने का साहसी प्रयास है। आँचलिकता के आकर्षण एवं लोक जीवन की छटा से शान्त जी की कहनियाँ एक विशेष परिवेश के साथ जुड़ जाती हैं। 'ठोरॅ', 'रा'वमुति माने', 'त्रिकूंजल' शीर्षक कहानियों को पढ़ कर शान्त जी की रचना क्षमता का सही अनुमान लगाया जा सकता है।

सन् 1997 ई० में 'शान्त' जी की तीन कहानियाँ 'फोकदम साऽब', 'रहमान काकुॅन बूनि' तथा 'चन्द्रकलश' भारतीय भाषाओं के केन्द्रीय संस्थान, मैसूर से डॉ० ओमकार कौल के सम्पादकत्व में प्रकाशित कश्मीरी कहानी संग्रह 'गिलिटूरि' में संगृहीत हैं। कहानी पर शान्तजी की एक आलोचनात्मक कृति 'अफ़सानुॅ क्या गव' (कहनी क्या है?) भी प्रकाशित हो चुकी है।

♣

'शान्त' जी कश्मीरी भाषा के एक अनुभवी नाटककार हैं। इन की कई नाटय् रचनाएँ श्रीनगर रेडियो स्टेशन से साभिनय प्रसारित हो चुकी हैं। कश्मीरी भाषा में 'यलि पन रोव' (जब दागा खो गया) 'शान्त' जी की पर्याप्त चर्चित नाटय् रचना रही है। यहाँ इस बात को स्पष्ट करना आवश्यक है कि शान्त जी को रंगमंच के साथ ज़बरदस्त लगाव रहा है। स्वयं उन्हें अभिनय में विशेष रूचि है और नाट्य मंचन तथा मंच शिल्प की सम्यक् जानकारी है। समकालीन हिन्दी नाटक की दशा और दुर्दशा से 'शान्त' जी वाक़िफ़ हैं। इलक्त्रानिक माध्यम के अभूतपूर्व फैलाव से आज रंगमंच/लोक नाटक/ नुक्कड़नाटक/व्यंग्यनाटक/तमाशा आदि नाना नाटय् विधाओं की क्या उपयोगिता अथवा प्रासंगिकता रही है – द्रुत गति से बदल रहे परिवेश के प्रति भी शान्त जी सचेत हैं।

♣

बहुभाषा विद् शान्त जी एक सफल एवं समर्थ अनुवादक भी हैं। कश्मीर के प्रसिद्ध श्रृंगारिक कवि रसूलमीर (.........1889ई०) की कविताओं का हिन्दी में अनूदित एवं सम्पादित संग्रह 'पोशिमाल' (फूलों की माला)

शीर्षक से शान्त जी ने प्रकाशित किया है। 'नुंदऋषि' शीर्षक से उन की एक और अनूदित रचना प्रकाशित हो चुकी है जिस में शैख़ नूर–उ–द्दीन (1376–1438ई॰) की कश्मीरी कविताओं (श्रुखों) का अनुवाद हिन्दी म किया गया है। रूसी लेखक एंटन चेखॉफ (16/17 जनवरी 1860–2 जुलाई 1904) के नाटक 'तीनबहनें' का कश्मीरी अनुवाद 'त्रे ब्यननी' शीर्षक से शान्त जी ने किया और यह रचना भी प्रकाशित हो चुकी है। रेडियो कश्मीर श्रीनगर के लिये शान्त जी ने कई भाषाओं की नाटय् रचनाओं के अनुवाद कश्मीरी और हिन्दी में तैयार किये और इसी प्राकर कई कश्मीरी कविताओं के हिन्दी अनुवाद न केवल आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित हो चुके हैं अपितु विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में भी प्रकशित हो चुके हैं।

♣

एक सफल अनुभवी सम्पादक की भूमिका को भी शान्त जी ने निबाहया है और आज भी निबाह रहे हैं।

अ– पुस्तक सम्पादक के रूप में शान्त जी की कश्मीरी रचना 'नसरिच किताब' (गद्य पुस्तक) उल्लेखनीय है जो स्नातकोत्तर कश्मीरी–विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय से सन् 1981 ई॰ में प्रकाशित हो चुकी है। इस पुस्तक में कई प्रसिद्ध कश्मीरी गद्य लेखकों की रचनाएँ संगृहीत हैं। 41 पृष्ठों की विस्तृत भूमिका में शान्त जी ने कश्मीरी गद्य की विकास यात्रा पर अपने संतुलित विचार व्यक्त किये हैं। कश्मीरी गद्य के संक्षिप्त इतिहास की सम्यक् जानकारी के लिये शान्त जी द्वारा लिखित यह अग्रलेख पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है।

आ– कोश सम्पादक के रूप में 'त्रिभाषा कोश' को तैयार करने में अन्य सम्पादकों के साथ शान्त जी ने 'हिन्दी–कश्मीरी–अंग्रेज़ी कोश' (तीन खण्ड) के निर्माण में अपना भरपूर योगदान दिया है।

इ– पत्रिका सम्पादक के रूप में 'शान्त' जी आज कल कश्मीरी पण्डितसभा, अम्बफला से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'क्षीरभवानी टाइम्स' का सम्पादन पर्याप्त सम्पादकीय सूझबूझ के साथ कर रहे हैं। पत्रिका का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में शारदा पीठ की सांस्कृतिक–साहित्यिक उपलब्धियों की पुनर्व्याख्या करते हुए युगीन रचनाकार की सर्जनात्मक क्षमताओं से जनमानस को अवगत कराना है।

साठोत्तरी हिन्दी कविता के विकास में अहिन्दी प्रदेशों के हिन्दी कवियों का योगदान भी प्रशंसनीय रहा है। इस कविता को जनमानस के साथ जोड़ने में, इसे लोकरंग अथवा आँचलिक तत्त्वों से गरिमामय बनाने में तथा सांस्कृतिक और ऐतिहासिक/अर्द्ध ऐतिहासिक कथा तत्त्वों को युगीन सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में नये अर्थ–बोध के साथ प्रस्तुत करने में अहिन्दी भाषा–भाषी कवियों की अपनी विशेष भूमिका रही है। शान्त जी साठोत्तरी हिन्दी कविता के एक जाने माने कवि हैं। इन का पहला हिन्दी कविताओं का संग्रह 'खोटी किरणें' शीर्षक से सन् 1965 ई॰ में 'नीहार प्रकाशन' श्रीनगर – कश्मीर से प्रकाशित हुआ। इस में कुल चालीस कविताएँ संगृहीत हैं। अन्त में चार पृष्ठों का कवि द्वारा दिया गया वक्तव्य 'सप्तकीय–परम्परा' की स्मृति दिलाता है। कई दशाब्दियों की निरन्तर साधना के बाद आज उन का सर्जनहार कवि विकास के विभिन्न मंज़िलों की सूचना देता हुआ 'कविता अभी भी' काव्य संकलन में निखर उठा है। शान्त जी का यह काव्य संकलन सन् 1997 ई॰ में 'नीहार' प्रकाशन सुभाषनगर जम्मू से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में पिछले तीन दशकों के कटु–मधुर अनुभवों से जुड़ी 'शान्त' जी की 96 कविताएँ संगृहीत हैं जिन में 18 कविताएँ विस्थापन की पीड़ा को मुखर कर रही हैं। सन् 1996 ई॰ में अत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत 'शान्त' जी का मानना है कि –'कविता अभी भी' मेरा अतंस से संवाद का मुख्य माध्यम है। बिना किसी सम्भ्रम के।' काव्य संग्रह 'कविता अभी भी' में प्रत्येक रचना के साथ लेखन तिथि दी गई है। रचना का मूल्यांकन करते समय तथा लेखक की सामूहिक रचना प्रक्रिया को समझने में इन तिथियों का पर्याप्त महत्त्व है। प्रस्तुत लेख में मैं केवल उन की कविताओं के सन्दर्भ में निम्न लिखित पाँच बिन्दुओं की ओर विज्ञ पाठक का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ :–

1) 'शान्त' जी अपने समकालीन सन्दर्भों के साथ दृढ़ रूप में जुड़े हुए हैं। वे जो कुछ लिखते हैं, अपने अनुभव के आधार पर लिखते हैं और उस तमाम लेखन के लिये अपने आप को ज़िम्मेदार मानते हैं। समग्र रूप से यह दायित्व बोध उन की कविताओं का एक आकर्षण है। उन्हीं के शब्दों में –'हमें शब्द को बचाना होगा, फिसलन से अर्थ के तमाम दाय और दायित्व के साथ।' ('कविता अभी भी'– भूमिका)

2) 'शान्त' जी अपने सांस्कृतिक विरसे के साथ गहन रूप से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। उन की सांस्कृतिक पहचान शब्दों को अर्थ–गर्भित करने में सहायक सिद्ध हुई है। परम्परागत प्रसंगों को समकालीन सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने में उन्हें विशेष रूचि रही है। लिखते हैं :–

–'ऐसा है बंधु कि मेरे पैर वितस्ता की कीच ने
पकड़ रखे हैं
और हड़बड़ाहट में
मैं उन्हें पीछे छोड़ आया हूँ
मेरा माथा अभी भी
यहाँ के ताप से पिघल नहीं रहा
यह सदियों से
महादेव और हरमुख की मेघढकी चोटियों से
ठण्डे धीमे संवाद में
लीन है।' (कविता अभी भी–पृ०–142–143)

3) 'शान्त' जी आज भी कश्मीर की माटी के प्रति समर्पित हैं। इसे आप स्थानीय रंग कहिये, आँचलिकता कहिये अथवा अपनी मिट्टी की सौन्धी ख़ुशबू कहिये। शान्त जी की रचनाओं में यह ख़ुशबू क़श्मीरी गुलाब की तरह महक रही है। आज घाटी से बहुत द्दर रहने की विवशता झेलते हुए 'शान्त' जी जब यादों की दुनिया में खो जाते हैं तो मातृभूति की अश्रुसिक्त स्मृतियाँ रह रह कर उन के मानस पटल पर सौ सौ बिजलियों की तरह कौंध उठती है :–

–'कैसे उतर सकता है मेरी आँखों से
वासंती रंग
वसंत पर आकर ही रुक गया था
मेरी सदियों का ऋतुचक्र
दोबरस पहले।
इसी दिन
चलपड़ा था मेरा काफ़िला
वतन को विदा कहती भीगी नज़रों से पगडंडी पगडंडी
खेत खेत

घाटी घाटी
पीले फुँदनी वाली सरसों तड़प उठी थी।'

('कविता अभी भी'–पृ०–140)

परदेस में रह कर भी अपनी सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने की भरसक चेष्टा करते हुए कभी कभी जब मन ही मन खंडित होने का अनुभव सताने लगता है तो कवि अप्रत्यक्ष रूप से कश्मीर को ही अपनी व्यंगयोक्ति का निशाना बना लेता है :–

–'कश्मीर !
घाटी में जी रहे हो कया ?
तुम्हें ख़बर है
कि तुम ख़ुद अपना इतिहास नहीं रहे
तिथियाँ भी नहीं रहे हो ?
जानते हो ?
घाटी के बाहर तुम को कैसे जी रहा हूँ
तुम्हारी पोथियों के बिखरे पन्ने कैसे सी रहा हूँ ?'

(कविता अभी भी'–पृ०–163)

4) विस्थापन ने शान्त जी को आशान्त नहीं किया अपितु उन्हें नये रचना सन्दर्भों के साथ जोड़ दिया। विस्थापन काल के कटु अनुभव, असुरक्षित अस्तित्व की पीड़ा, खंडित जीवन मूल्यों को समेटने का संकल्प, शिद्दत का एहसास–ए–ग़म तथा अपने कहलाने वालों का बेगानापन/अजनबीपन शान्त के रचना–कैनवास को विस्तृत कर देता है। एक नई भावानुभूति मानस में रेखांक्ति होकर काग़ज़ पर मूर्त रूप धारण करती है और कविता कहलाती है। 'प्रमाण पत्र नहीं है मेरे पास' शीर्षक कविता में शान्त जी लिखते है :–

–'नहीं,
नहीं; वह प्रमाण पत्र नहीं था
जो पलायन की उस रात मुहँ ढक कर
मेरा विद्यार्थी मेरे आंगन में फेंक गया था
वह
मुझ से अक्षर अक्षर सीखे मेरे शिष्य का हस्ताक्षरित

अल्टीमेटम था
जिस की रू से
अगली सुबह उगने वाला सूरज
मेरे रोशनदान पर रखा
टाइम बम था।'

('कविता अभी भी'–पृ०–153–154)

विस्थापन की पीड़ा इस कविता में बड़ी शिद्दत के साथ महसूस हो रही है।

5) 'शान्त' जी भविष्य के प्रति आशावान है। कठिन आत्म–निर्वासन में जीवन जीने की विवशता झेलते हुए वे आने वाले कल के प्रति निराश नहीं हैं। उन्हें विश्वास है कि 'वंदुं चलि, शीन गलि ब्ययि यियि बहार' (शिशिर बीत जाये गा, बर्फ़ पिघल जाये गी और पुनः बसतं खिल उठे गा) स्वयं उन्हीं के शब्दों में :–

–'पर स्थिति सदा ऐसी ही बनी रहे, ऐसा सोचना भी ठीक नहीं। इसे संक्रान्ति काल ही माना जा सकता है। .... नई प्रस्तुति में आदमी की पहचान तथा अनिवार्य प्रासंगिकता फिर स्थापित करे गी कविता।'

('कविता अभी भी' – भूमिका से)

अपने संकल्प से 'शान्त' सर्जनात्मक प्रतिभा को एक नई दिशा प्रदान करने के हेतु कटि बद्ध दिखाई देते हैं। 'पोथियाँ' शीर्षक कविता में उन का यही आशावादी स्वर दिशाओं में गूँजता प्रतीत होता है :–

–'कश्मीर
तुम मुझे तार तार कर सकते हो
पन्ना पन्ना बिखेर सकते हो
पर मैं टुकड़ा टुकड़ा समेट कर जियूं गा
फिर सम्पूर्ण हो जाऊं गा
और तुम्हें फिर पाऊं गा।
कश्मीर !
तुम तोता – चश्म हो सकते हो
पर सदियों के लिखे अपने ही अक्षरों की मीमांसा
नकार सकते हो ?
मैं तुम्हारी ही पोथियों से

तुम्हें पाने की नई तिथियाँ
खोज लूँगा।'

('कविता अभी भी'–पृ०–162–163)

♣

अन्त में 'शान्त' जी के व्यक्तित्व के विषय में निजी अनुभवों के आधार पर विचार व्यक्त करना यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा। 'शान्त' जी अत्यन्त सौम्य, शान्त स्वभाव के दृढ़ संकल्पी, स्थिर चित्त एवं संतुलित सोच–विचार के साहित्यकार हैं। एक योग्य शिक्षक के नाते उन्होंने कश्मीर घाटी में ऐतिहासिक भूमिका निबाही है। हिन्दी भाषा/साहित्य के प्रचार/प्रसार में सदा तत्पर रहे। कश्मीर विश्वविद्यालय में कुछ समय के लिये और घाटी के विभिन्न महाविद्यालयों में 37 वर्षों तक वे पढ़ाते रहे और आज कल सेवा निवृत्त हो कर स्थायी रूप से साहित्यक गतिविधियों के साथ जुड़ गये है। 'शान्त' जी से मेरा सम्पर्क पिछले 35 वर्षों से रहा हैं। मैं ने उन्हें कभी क्रोधा करते हुए अथवा क्रुद्ध या क्षुब्ध मुद्रा में नहीं देखा है। शिष्ट एवं सौम्य प्रकृति के मालिक शान्त जी के साथ हमारी बेशुमार आशायें जुड़ी हैं।

समकालीन कश्मीरी और हिन्दी सर्जनात्मक साहित्य के उज्जवल भविष्य की कामना करते हुए 'शान्त' जी के सक्रिय, सुखद, मंगलमय एवं आनन्ददायक भविष्य के प्रति आशावान/आशावादी रहना ही तो संस्कार–सम्पन्न होने की पहचान है।

♣♣♣

---- *** ----

कवि अर्जुन देव "मजबूर" कृत "त्यो'ल"
विस्थापन की मर्मान्तक पीड़ा : वक्षस्थल में चुभा खंजर

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थाशं में कश्मीरी कविता के इतिहास में स्वर्गीय मोती लाल साक़ी, स्वर्गीय चमन लाल चमन, स्वर्गीय सर्वानन्द कौल प्रेमी, स्वर्गीय ग़ुलाम रसूल सन्तोष, पृथ्वी नाथ कौल सायिल, अर्जुन देव मजबूर, फ़ारूक नाज़की, मोहन लाल आश, शम्भू नाथ भट्ट हलीम, काशी नाथ बागवान आदि कवियों का अभूतपूर्व योगदान रहा है। विस्थापन के बाद अर्थात् सन् 1990 ई॰ से आज तक विस्थापित कश्मीरी कवि को बीभत्स यथार्थ से निरन्तर जूझना पड़ा और आज भी वह आत्म विश्वास के साथ गिरते सँभलते, बहुधा ठोकर खाते अपनी पहचान को सुरक्षित रखने के हेतु भरसक प्रयलशील दिखाई दे रहा है।

ज़िला अनन्तनाग कश्मीर के एक चर्चित गाँव ज़ैनपोरा के मूल निवासी, आनन्द लोक वासी, अर्जुन देव आज कल ऊधमपुर में तपते शिला खण्डों से तप्त, आग उगलते भानु–प्रकोप को झेलने के लिये विवश दिखाई देते हैं। यहाँ न तो झरझराते जल प्रपातों की समधुर अंनुगूँज है और न भौरों की मधु गुञ्जार, न लालःज़ार दिखते हैं और न शालुँमार की बहार। न किसी अप्सरा सदृश पुष्प वाटिका का मदमाता यौवन नज़र आता है और न मधुभाषी पक्षियों के मधुबोल या प्रेमालाप। मात्र यह कि –

–'खण्डहरों में रात दिन बस तपरही है ज़िन्दगी
बदनुमा टेन्टों में अब तो सड़ रही है ज़िन्दगी।'

यहाँ न तो नाविका विहार का उल्लास कहीं नज़र आता है और न वितस्ता का नशीला प्रवाह। बस सब बेहाल हैं – बेहाल।

जीवन जीने की इस विवशता को हम पिछले 13 वर्षों से सहते चले आ रहे हैं और अब हमारी सहन शक़्ति भी किसी जन नेता के फ़ाहों की मोहताज नहीं है।

घाटी के नामवर कवि, गद्य लेखक, अनुवादक एवं सम्पादक श्री अर्जुन देव

मजबूर का एक काव्य संग्रह 'त्यो'ल'[1] सन् 1995 ई॰ में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत संग्रह में एक लम्बी कविता 'त्यो'ल' शीर्षक से संगृहीत है। इस के अतिरिक्त कई नज़्में, ग़ज़लें, नग़्में, 'टुरव' तथा वच़नगीत भी हैं। प्रथम रचना (लम्बी कविता) 'त्यो'ल के आधार पर प्रस्तुत काव्य संग्रह का नाम 'त्यो'ल' रखा गया है।

लम्बी कविताएँ लिखने की परम्पर हमें कश्मीरी काव्य के इतिहास में यत्र तत्र देखने को मिलती है। आज के कम्पयूटर युग में अथवा द्रुतगामी जीवन के बहाव में इन रचनाओं का क्या महत्त्व है – यह एक विचारणीय विषय है। वस्तुतः आज हम संक्षेपण (Miniature) युग में जी रहे हैं। हमरा यह विश्वास कि 'लघुरूप में सौन्दर्य है' (Small is beautiful) दृढ़ से दृढ़तर हो गया है। कम्प्यूटर के मॉनीटर पर हम क्षण मात्र में एक फ़्लैश् (Flash) के द्वारा परिणाम/यथार्थ से अवगत हो जाते हैं क्योंकि आज हम क्षणों में जीवन जीने के अभ्यस्त हो गये हैं और प्रत्येक क्षण हमारे लिये मूल्यवान है।

लेकिन बड़ी नम्रता के साथ मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि जिस यथार्थ वस्तुस्थिति के विषय में कश्मीर के 7 लाख अल्पसंख्यकों ने कभी सोचा भी नहीं था वह कँपा देने वाला ज़हरीला यथार्थ उन की नस नस में प्रवाहित हो उठा। प्राणरक्षा के हेतु आदमी क्या नहीं करता। आज सब कुछ पीछे छोड़ कर घर का मालिक ही बेघर अवस्था में तारकोल बहाती पक्की सड़कों के किनारे अथवा बीहड़ बंजर वीरान भू–खण्डों में जीने के लिये विवश है।

पण्डित अर्जुन देव मजबूर ने शायद सपने में भी यह न सोचा था कि मई–जून–जुलाई और अगस्त के महीनों में 35^0–47^0 स्यलशस (Celsius) तापमान में आग उगलते शिला खण्डों के साये में रहना होगा। जाने किन पापों का दण्ड भुगत रहे हैं – हम सब एक साथ। देखते ही देखते मानवता क्षतिग्रस्त होकर कराह उठी।[2] स्वाभाविक है कि बीते हुए कल की

1– 'त्यो'ल'–अर्थात् जलन, दाह, डाह, मनस्ताप अथवा मनोव्यथा।

'त्यो'ल' कश्मीरी शब्द का उपयुक्त हिन्दी अनुवाद 'मनस्ताप अथवा 'जलन' है। (लेखक)

2– 'सुखद जीवन जीने वाले लोग क्षणों में खानाबदेश बन गये। मानवरक्त पानी से ज़्यादा सस्ता होगया। सहन शीलता, 'शान्ति' तथा मेलजोल की जगह अविश्वास एवं घृणा ने लेली। इस आतंक, गुमराही, ज़ातपरस्ती, अपराधीकरण, अत्याचार/अन्याय तथा अराजकता से मानवता को क्षति पहुँची।' –'त्यो'ल'–अर्जुनदेव मजबूर–ज़ान–पृ॰–7

मधुरस्मृतियाँ अनुभूति प्रवण कवि के मानस पटल पर रह रह कर अंकित हो जाती हैं। पूर्व जीवन का एक एक फ़्लैश् उस के वर्तमान को असहनीय और अधिक पीड़ादायक बना देता है।

सम्भवतः आदमी द्रुतगामी जीवन में सब कुछ भूल सकता है लेकिन माँ की ममता और मातृभूमि के लोल[1]–व्यवहार को कभी भुलाया नहीं जासकता। हम आकर्षण के कभी न टूटने वाले बन्धन में बन्धे रहते हैं। परिस्थिति वश जब एक हसास (संवेदनशील) शाइर मातृभूमि से बिछुड़ जाता है तो वियोग की विह्वलावस्था में उसे रह रह कर माँ के एक एक अंग की पुण्य स्मृति न केवल तड़पा देती है अपितु चुपके चुपके रुला भी देती है। यह एक भीषण स्थिति है जब आदमी की आँखों का पानी तो सूख गया है पर अन्दरून निरन्तर रो रहा है। मनोचिकित्सक इस के कारणों पर तार्किक दृष्टि से प्रकाश डाल सकते हैं लेकिन एक सहृदय अवाक् मुद्रा में भीतर की वेदना को ललाट के चित्र फलक पर अंकित कर देता है।
भीतर की इसी वेदना – अर्थात् मनस्ताप को लेकर कवि अर्जुन देव चित्त के राजहंस को कश्मीर यात्रा पर रवाना कर देते हैं ताकि कई वर्षों के बाद लालःज़ारों, आबशारों और मर्ग़ज़ारों (रमणीय स्थलों) के ऊपर से उड़ान भरते हुए वह अपने विवेक बल के आधार पर स्वयं यह अनुमान लगा सके कि वहाँ की दशा और दिशा क्या है। राजहंस के विषय में यह बात प्रचलित है कि उस में नीर–क्षीर विवेक की अद्भुत शक्ति होती है। वह दूध का दूध और पानी का पानी अलग करने की क्षमता रखता है। उस में सत्य को पहचानने का अद्भुत कौशल है और वह मानसरोवर निवासी सात्विक स्वभाव का जल पक्षी मोती चुगता है। कवि को पूर्ण विश्वास है कि केवल विवेकशील राजहंस ही वस्तुस्थिति का सही आकलन कर सकता है। भूमिका में इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए कवि लिखते हैं कि :–

–'विद्या और ज्ञान की देवी सरस्वती हंसवाहिनी है। हंस कामदेव को भी कहते हैं जो शोभा और सौन्दर्य के देवता है। हंस चित् को भी कहते हैं चित् अर्थात् जीवन की वह धड़कन जो मनुष्य को यथार्थ बोध की क्षमता

1– 'लोल' कश्मीरी भाषा का अत्यंत आकर्षक शब्द है। यह शब्द इश्क़, प्रेम, मुहब्बत, शौक़, चाह, लगन तथा आकर्षण का वाचक शब्द है। मैं ने इस शब्द को हिन्दी भाषा में ठीक उसी रूप में व्यवहार में लाया है जिस रूप में कश्मीरी में प्रचलित है। इसे अपनाने का प्रयास किया है।' (लेखक)

प्रदान करती है। उसे ही दूध और पानी अलग–अलग करना कहते हैं। यही अर्थगर्भित लक्षण मैं ने 'त्यो'ल' नज़्म में व्यवहार में लाया है।'[1]

'त्यो'ल'–ज़ान–पृ०–7–8

अपनी मात्तृभमि के साथ उस की बेशुमार यादें जुड़ी हैं। आख़िर कौन प्रकृति की इस अद्भुत सौन्दर्य–स्थली से प्रभावित नहीं हुआ होगा। जिन का रिश्ता इस स्वर्ग लोक के साथ माँ–बेटे का रहा हो वे तो आज भी उस के पुनीत चरणों पर अपना सर्वस्व निछावर करने के लिये कटिबद्ध दिखाई देते हैं। कवि अत्यंत दीनहीन अवस्था में चित् के राज हंस को इस यात्र पर रवाना होने के लिये तैयार करते हैं। समस्त आवश्यक सूचनाएँ दे कर उस को वस्तुस्थिति से अवगत भी कराते हैं ताकि यात्रा में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े।

कंवि जो कुछ राजहंस से कहता हे वही प्रस्तुत लम्बी कविता का वर्ण्य–विषय बन जाता है और विस्थपित कवि की मानसिक दशा का परिचायक। वह स्मृतियों का अनमोल ख़ज़ाना लेकर अपने घर से विवश होकर निकला है और आज यही घायल स्मृतियाँ उस के हृदय में शूल के समान चुभ कर मर्मान्तक पीड़ा का अनुभव कराती हैंः–

–'चित्त के राजहंस को मैं ने राज़ की बात बता दी
अपनी यादाश्त के रथ साथ दिये
ठहरने हेतु एक जलावृत भूखण्ड की याद दिला कर
आकाश मार्ग से तीव्र उड़ान भरने को कहा
बहुत समझाया और किया विनय–प्रणय
धुन्ध में चलना धीरे धीरे सम्भल सम्भल कर
किसी तरह की फ़ज़ूल ख़र्ची नहीं करनी पड़े गी
पुनः देख लेना आज मेरा वह संसार।' 'त्यो'ल'–पृ०–9

कश्मीरी मूल रूप

–'म्य बोवुम सीर च्यतकिस राज़ॖ होज़ँस
पनॖॅन रथ यादॖ वऽत्रॖॅक सूत्यि दितमस
मकामा अख ज़ुवातस याद पॉविथ
खसुन आकॉश वनुमस तेज़ वुफ दिथ

स्यठाह पोरमस तुॅ कोरमस ज़ारुॅ पारै
वुनल आऽसी तुॅ पकिज़े वारुॅ वारै
करुॅन नो छय नुॅ कुनिची द्यार कारै
सु आलम म्योन अज़ वुछ ज़्यन दुबारै।'

कवि राजहंस के ऊपर एक बड़ी ज़िम्मेदारी डाल देते हैं अतः आवश्यक है कि उस को सम्यक् रूप से इतिहास की इस दुर्घटना से उत्पन्न वस्तुस्थिति से परिचित कराया जाये। वस्तुस्थिति का बोध कराने के हेतु ही कवि दिल खोल कर अपनी बात राजहंस के सम्मुख रख देते हैं। सही परिप्रेक्ष्य में सारी परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए वे राजहंस की नीर–क्षीर–विवेक बुद्धि को सक्रिय बना देना चाहते हैं। प्रकाश स्त्रोत ढूँढने का निमंत्रण देते हुए कवि राजहंस से कहते हैंः–

–'ज़माने के सब हालात कह सुनाये
दिल की समस्त चटखिनियाँ खोल के रखदी
विचारों की गहराई को बराबर ढूँढ कर
मैं ने कहा कि खोज लेना आज प्रकाश स्त्रोत।'

'त्यो'ल'–पृ०–9

_कश्मीरी मूल रूप_

–'ज़मानुॅक बॉवमस हालात सॉरी
दिलुॅक मुचरिथ म्य थॉवमंस सॉर तॉरी
व्यचारन हिन्द स्नयर छ़ॉरिथ बराबरं
म्य दोपमस छांडतक अज़ गाशुॅ आगर।'

काश्मीरी घाटी का अद्‌भुत स्वर्गिक प्राकृतिक सौन्दर्य देखकर कहीं राजहंस आकर्षण के बन्धन में बन्ध कर अपने पथ से विचलित न हो जाये अतः उसे आरम्भ में ही सावधान करने की आवश्यकता हो गी।
पर्वतीय कुल्या कहीं उसे मोह न ले अतः यात्रा आरम्भ करने से पहले ही उसे सचेत करना ज़रूरी है :–

–'करे गी अनुनय विनय पहाड़ी कुल्या
कह देना कि आज मैं बहुत जल्दी में हूँ
काम ही ऐसा है कि कोई और अपाय नहीं
दे देना आशिष् (असीस) कि काम बन जाये मेरा

हवा हो गी मुहब्बती मस्ती चढ़ा दे गी
मीठे फल जाने कितने छाँट के लाये गी।'

'त्यो'ल'–पृ०–10

कश्मीरी मूल रूप

–'पहॉड़ी आरुँ करनै ज़ारुँ पारै
चुँ दॉपज़्यख अज़ हसॉ छम लारुँ लारै
छ' कॉमा तिछ़ कि'न्ही यथ छुम नुँ चारै
करिव ऑही लग्यम युथ कामि तारै
हवा ऑसी मछ़्युल मस्ती सु खारी
मो'दुंर म्यवुँ चानि बापत कूँत्य चारी।'

विस्थपित होकर संकटमय जीवन जीने की विवशता आज सहृदय कवि के भीतर व्यथा का पारावार उफना देती है। वर्तमान की दुर्दशा और पराजय बोध के एहसास में वह अपने विगत कालीन वैभव का मधु घोल देना चाहता है। इसीलिये यादों का ताजमहल सजा कर वह एक एक मर्मरी (मरमरी) समतल पत्थर से जुड़ी दास्तान राजहंस को सुनाने के हेतु अधीर हो उठता है। चाहे वह पहाड़ी नद हो या बनफ़्शी [1] फूल, जल स्रोत हों या जल प्रपात। खड़े देवदारू के वृक्ष हों या चिनार की फैली घनी छाँव, सब्ज़ मखमली फ़र्श हो या लालःज़ारों की बहार वे राहें हों जिन पर मैं वर्षों निरन्तर चलता रहा या देवालय जिन के साथ मेरे विश्वास जुड़े हैं, चहकते बुलबुल हों या बतियाती कोयल, पर्वतीय रम्य स्थल हों या पुष्पवाटिकओं का खिला यौवन, शहर हो या गाँव, बादाम वाटिका हो या सेबों के फलोद्यान (Orchards), हिमलम्ब (Icicle) हों या हिम शैल (Ice berg), पगडंडियाँ हों या दुर्गम पहाड़ी मार्ग, भोले भाले किसान हों या चतुर कामगार, ग्राम मुखिया हो या ग्राम सेवक, उत्साहित युवक हों या हतोत्साहित बद्धिजीवी, अपनी ज़बान पर ताला लगाये शाइर हो या गूँगा क़लमकार, कोई सती साध्वी माँ हो या भोली भाली बहन, कोई सिद्ध पुरुष हो या कोई साधक, कोई पीर हो या कोई फ़क़ीर सब से मिलना, मिलते रहना, शुभसमाचार पूछना और मेरे दग्ध हृदय की व्यथा उन्हें सुनाना उन से अवश्य कहना कि आज भी मैं इतिहास के वक्ष पर स्याह हाशिये के साथ अंकित हूँ। मैं जीवित हूँ और जीवित रहूँगा बस,

---

1– बनफ़्शी–(फा०) कश्मीर का एक पौदा जो दवा के काम आता है।

तुम्हारी पुनीत स्मृति के सहारे।
कवि चित् के राजहंस को प्रदूषित शहरों से दूर हिमाच्छादित घाटियों में उड़ान भरने का निमंत्रण देते हुए लिखता है :–

–'यदि चाहो तो पुरानी राहों से गिला करना
मंज़िल ढूँढने में हवा की फुर्ती बरतना
शहरों से दूर चरागाहों में स्वच्छ बयार का आनन्द लेना
इसी से सचमुच तुम तृप्त हो जाओगे
दूर से तो तुम एक छोटा सा पक्षी दिखाई दोगे
प्रातः सरोवर में खिले पद्मपुष्प की आभा से सुशोभित।'

'त्यो'ल'–पृ०–11

कश्मीरी मूल रूप

–'वतन प्रान्यन करख यो'द ग्राव करिज़े
चुॅ मंज़िल छ़ारनस पोज़ वादुॅ करिज़े
चुॅ शहरव दूर नेरख खो'श हवा चख
अमी सूत्यन पज़ी हो सीर सपनख
चुॅ लोकटुई जानवारा दूरि बासख
सरस सुबहै फो'लिथ पम्पोश शूबख।'

कवि आज विषपायी बन कर जीवन जी रहा है। ज़िन्दगी का अकल्पनीय यथार्थ आज फण फैलाये सर्पराज के समान उसे डस रहा है और प्रत्येक डसन के साथ वह पुनः जीने का संकल्प लेकर पंक्तिबद्ध खड़ा हो जाता है। यूसमर्ग का सैलानी, पहलगाँव का मनमौजी और डकसुम का सौन्दर्य निरीक्षक, अरे नील नाग का पथिक, अमरनाथ का यात्री, हज़रतबल का उपासक और क्षीरभवानी का भक्त, डल झील का मतवाला, चार चिनार का सैलानी, बादाम वारी का लोक गायक और शालमार का लोक नर्तक, हब्बाख़ातून का आशिक़ और रसूलमीर की माशूक़, मार्तण्ड का सूर्य मन्दिर और अल्मदार का च्रारिशरीफ़, पीर पण्डित पादशाह ऋषिपीर की आरामगाह और भवानी का वासकूरा, शारिका का देवीआंगन और ज्वाला देवी का पर्वतवास–स्मृतियों से जुड़ी बेशुमार यादें, अद्वितीय दृश्य, मधुर अनुभव, पावन तीर्थस्थल, आनन्द स्त्रोत और जाने क्या क्या? सब कुछ गवाँ दिया। स्वर्गीय मोती लाल 'साक़ी' के शब्दों में :–

—'मज़बूर साहब ने आप बीती और गवाँदेने की व्यथा को वाणी प्रदान की है। यह गवाँ देने की पीड़ा भौतिक वस्तु से जुड़ी नहीं है आपितु आध्यात्मिक एवं मानसिक शान्ति से जुड़ी है। यह कश्मीर के दुलहिन– व्यवहार, इतिहाम, सभ्यता एवं मानव मूल्यों के रवो देने की बात है जिस को धनसम्पदा से मोल नहीं लिया जा सकता। यह रवो देना चीड़ वृक्ष की लकड़ी की दहन नहीं कि क्षणमात्र के लिये तेज़ जलकर राख हो जाये अपितु यह रवो देना तो भीतरी अलाव की दहन है जो जीते जी कभी बुझती नहीं।'

'त्यो'ल'–प्राक्कथन–मोती लाल साक़ी–पृ०–6

दास्तान बड़ी लम्बी है लेकिन आलिंगन पाश में जकड़ी है – बस एक तुम्हारी याद। नीलकंठ के रूप में पिषपायी बनना तो एक बात है लेकिन ज़हरीले अनुभवों के पथ से गुज़रना तो दूसरी ही बात है और इस पथ पर चलने के हतु चाहिये–भगीरथ का साहस और संकल्प। कवि लिखते हैं :–

—'अमर हो जाओगे साहस बनाये रखना
वह जीवित रहता है जिस में हो प्रबोधन शक्ति
कहा है प्रबुद्ध जनों ने उचित समय पर होती खेती
किस ने पहले ही देखा कि कल क्या होगा।
पूरी तरह परखना चाहिये जो कहना हो
आज, तूफ़ानों में घिरी पड़ी है नूह [1] की नाव।'

'त्यो'ल'–पृ.–13

कश्मीरी मूलरूप

—'अमर स्पनख चुॅ कॉयिम थविज़ि ह्यमथ
छु रोज़ान ज़िन्दुॅ सुई यस आसि प्रज़नथ
छु वोनमुत गाटल्यो वखतस प्यठुई क्राव
पगाह क्या आसि ब्रोंठुई कुस वुछिथ आव
यि बावुन आसि तथ पज़ि पूर परखाव
छे' तूफ़ानन अन्दर अज़ नूह सॅुन्ज़ नाव।'

1– नूह 'एक पैग़म्बर जिन के समय में पानी का बहुत बड़ा तूफ़ान आया था जिस में सारा संसार नष्ट हो गया था, कुछ आदमी बचे थे, जिन की संतान इस समय हैं।' 'हिन्दी उर्दू शब्द कोश'–उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रकाशित, सम्पादक–मुहम्मद मुस्तफ़ा खाँ 'मद्दाह' तृतीय संस्करण–1977 ई०–पृ०–360

कवि अपनी बात आगे बढ़ाते हुए अब राजहंस को हतिहास की एक भीषण सचाई से अवगत कराते हैं। सन् 1990 से आज तक हत्या, लूट, आगज़नी, ज़बरदस्ती कब्ज़ा सब कुछ हो रहा है। खिड़कियाँ, दरवाज़े, वाडरोब, छत, टीन, यहाँ तक कि बिजली – नल्के की फिटिंग, शोकेस ग़रज़ हर चीज़ जिस को मकान से खोल के या खोद के बाहर निकाला जा सकता है – निकालो, जहाद के नाम पर, बन्दूक की ज़ोर पर, फिर पिंजरनुमा मकान में रात के घुप अन्धेरे में आग लगा दो। समझो एक क़दम आज़ादी के निकट पहुँच गये। इस लिये कवि राजहंस से कहते हैं :–

–'देखो गे घर द्वार क्षत – विक्षत अवस्था में
दरोदीवार होंगे भग्न दशामें
प्रेम छलकाते गाँव – गँवई में घूमते जाता
सुरक्षित रखना चित्र इन के अपनी आँखों में
कुशल क्षेम पूछ कर आशिष लेते जाना
अग्नि दहन में फूलों के पौदे रोपते जाना।'

'त्यो'ल'–पृ०–13

<u>*कश्मीरी मूल रूप*</u>

–'लर्‌यन जायन वुछख बुथि खस्तुॅ गॉमुॅत
दरोदीवार आसन आवस्येमुॅत
बरिथ लोला गुठन गामन पकान गछ़
यिहिन्द तस्वीर चश्मन मंज़ रछान गछ़
रुॅच़र पाठा करिथ ऑही मंगान गछ़
च़ुॅ नारस मंज़ ति पोशे कुलि रूवान गछ़।'

यह सब देख कर विचलित नहीं होना राजहंस। यह तो इतिहास का घायल यथार्थ है। पहली बार हमारे सामने नहीं आया। अरे हम ने तो कई बार इस को झेला है, सहा है, देखा है, भुगता है। क्या बुतशिकन को भूल गये? यह भी तो बुतशिकनी दौर है। बामयान में बुद्धदेव को खण्ड खण्ड होते नहीं देखा। यह दूसरी बात है कि प्रकृति–न्याय का पहाड़ बाद में तालिबान पर टूट पड़ा ओर उन का वजूद, कुछ दिनों के लिये ही सही, खटाई में पड़ गया। लेकिन एड़वोकेट पण्डित टीका लाल टाऽपलू, दूरदर्शन केन्द्र श्रीनगर निदेशक पण्डित लसा कौल, एड़वोकेट पण्डित

प्रेमनाथ भट्ट, सेवा निवृत्त न्याय मूर्ति पण्डित नीलकंठ गँजू, गुप्तचर विभाग अधिकारी श्री एम.एल.भान, प्रसिद्ध कवि पण्डित सर्वानन्द कौल प्रेमी, समाजसेवी सतीश कुमार तिक्कू तथा अन्य सैंकडों अल्प संख्यक कश्मीर वासियों ने शहादत का जाम पी लिया था।

इस लिये इतिहास की इस भीषण सचाई को परखने के हेतु विवेकी चश्मा लगा कर कारणों पर गहराई से विचार करना होगा और मेरे चित् के राजहंस! नीर–क्षीर विवके का सामर्थ्य केवल तुझ में ही है :–

–'दूध में होगा मिला पानी बराबर
तुम्हें दूर रह कर करना होगा अलग दूध से पानी
देख सोच के सचाई तुम ढूँढ के लाना
मैं तुम्हारा शुभ चाहूँ गा टोपी होथों में लेकर
रखूँगा एक नया स्वच्छ स्थान ख़ूब सजा के
प्रतीक्षा रत रहूँगा साधुवाद के मेहराब चढ़ा के।'

'त्यो'ल'–पृ०–14

कश्मीरी मूल रूप

–'दो'दस आसी बराबर पोन्य मिलविथ
करुन ब्योन ब्योन चुँ छुई लोब पानुँ रूज़िथ
वुछिथ सूँचिथ पज़र चुँई ऑनज़ि छ़ॉरिथ
करय बो दायि खॉरा टूप वॉलिथ
नवुई अख शूच़ शाया शूबुँ रॉविथ
बुँ प्रारै शाबशिक मेहराब खॉरिथ।'

हाँ राजहंस! और भी बहुत सी चीज़ें देखो गे वहाँ। प्रकृति का अद्‌भुत श्रृंगार, मेरी धरती माँ का खिलता मुसकुराता स्वपनिल अथवा नग़मःज़न दिव्य स्वरूप, भौंरों की मधुगुञ्जार, चहकते पक्षियों का लययुक्त कलख, रिमझिम बरखा, फलदार वृक्षियों की झुकी टहनियाँ, गिलास की ललाई और सेबों का बाँकपन, तेज़ भागते पर्वती नद और वितस्ता का गहन गम्भीर शान्त बहाव और सब से बड़कर ठण्डा, मीठा, स्वच्छ बहता नीर। हाँ, ज़रूर लौटते समय मेरे लिये मधुर पेय जल लाना ताकि बहुत दिनों के बाद मेरी प्यास बुझ जाये। क्या करूँ! जी मचल रहा है कश्मीर के किसी पहाड़ी नद में प्रवाहित फेनिल जल को पीने के हेतु :–

—'गुलिलाल अतिशय पुष्पित होंगे पूरे जौबनपर
कुलिम पुष्पों का मुखप्रक्षालन करती होंगी बर्फ़ीली हवायें
बहुत दिनों तक आनन्द लोगे पुष्पित सरसों का
सायम् चुपके चुपके यहीं उतरते हैं फिरिश्ते
ज्ञान की बातें कहते हैं महीन ज़री वस्त्र धारण करके
वही दृश्य फोटू चित्र सदृश उपहार स्वरूप ले आना
पीने हेतु मीठा जल ले आना वहाँ का मुद्दत बीती।'

'त्यो'ल'—पृ०—14

कश्मीरी मूल रूप

—'गुलालन हुॅन्ज़ फुलय आसी तयस प्यठ
कुलिम पोशन छलान बुथ शीनुॅ ची छ़ठ
फुलय सन्दिजे हुॅन्ज़य यॉच़कॉल छ़ावख
वसान शामन ओं'तुई लो'त लो'त मलॉयिक
वनान तिम ग्यान ज़रीयिक खासुॅ लॉगिथ
सु मंज़र अक्सनॉविथ डॉल ऑन्यज़्यम
मोदुर त्रेशा ततिच यॉच़ कॉल ऑन्यज़्यम।'

आज भी कश्मीर के गौरवशाली अतीत के स्मृति अवशेष आप को वहाँ देखने को मिलें गे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह ऋषिभूमि ज्ञानियों, सिद्धों और सन्तों की तपस्या भूमि रही है। यहाँ विश्व प्रसिद्ध महान चिन्तक, इतिहासज्ञ, तंत्रशास्त्री, चिचारक, योग शास्त्री, सूफीसाधक, सृजनात्मक कलाकार, भाषा पण्डित, काव्य शास्त्री, शैवमत के आचार्य और राष्ट्रोद्धारक हुए हैं जिन्हों ने यहाँ के सांस्कृतिक विरसे में श्रीवृद्धि की है। हमें गर्व है अपने पूर्वजों की अद्भुत प्रतिभा पर, गर्व है उन के बौद्धिक वैभव पर तथा सरल निष्कलंक जीवन व्यवहार पर। यह तो तपस्वियों का लीलाक्षेत्र है अतः हे राजहंस ! तनिक सावधानी बरतना :—

—'वहाँ देखोगे तप—ऋषियों को मस्त तपस्या में
नहीं छेड़ना उन को किसी तरह तनिक भी
कश्मीर के लिये माँगना उन से शुभआशिष और शान्ति
भर जाये ज़ख्म हरे और मिटजाये सारे ग़म
यदि सम्भव हो तो सात स्त्रोतों को भी देख के आना

वैराग्य में देखलोगे नज़ारा वास्तंव का
देखोगे सादगी लिखित पीले पत्थरों पर
रोम रोम में झलकता है पुरा वैभव कश्मीर का।'

'त्यो'ल'—पृ०—15

कश्मीरी मूल रूप

—'अती तपुॅ रेश वुछख तपसॅू अन्दर मस
तिमन खेंचल करख यिनुॅ सॉ हवावस
कशीरे किच़ मंगुख ऑही तुॅ शॉन्ती
शफ़ा ज़खमन, गमन यकसर दफॉयी
गछी मुमकिन सतन नागन दि नज़रा
वुछख वॉरागुॅ मॉन्ज़ असलुक नज़ारा
वुछख ल्यदर्यन पलन लीखिथ चुॅ स्यज़रा
रूमस रूमस कशीरे प्रोन थज़रा।'

राजहंस! जब.तुम घाटी के ऊपर खुले वातावरण में उड़ान भर लोगे तो तुझे दूर दूर तक पेडों की घनी छाया में मकानों के झुण्ड (समूह) दिखाई देंगे जहाँ एक दशाब्दी पहले जीवन की उष्णता और हलचल सर्वत्र व्याप्त थी और आज जाने किस काले नाग ने सब को डस लिया है। केवल खंडहरनुमा मकान खड़े हैं और मालिक को देश निकाला मिला है। आँगुरी मुद्रा में जड़ा अनमोल नगीना कहीं गिर गया है। तुम चाहो तो रातभर अपनी थकान मिटाने के हेतु ठहर सकते हो पर तुम्हारा आतिथ्य सत्कार करने के हेतु कोई शेष नहीं बाचा है। रुला देने वाला माहौल ही तुम्हारा स्वागत करेगा और 'शीं' करती हुई क्लाशनकोप की गोली पास से लिकल कर भयाक्रान्त कर देगी। पर घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। यही आज यहाँ का यथार्थ है। चुपरहना राजहंस! बोलना नहीं। बुद्धिमानी का महत्त्वपूर्ण लक्षण है — खामोशी, कहीं तुम ने एक बार ज़बान खोल दी तो पुनः इस इच्छा को पूर्ण नहीं कर पाओगे। मैं जानता हूँ कि तुम बड़े अक़्लमन्द हो :—

—'इक घर आकर्षक मानो एकान्तवासी ऋषि हो
समतल आंगन चन्द्र किरणों से दीपित
आस पास तो परवशता की दास्तान है बहुत दुखद

जड़ीभूत हुआ है शराफ़त का जहान
दुखती हैं शिराएँ कण कण क्रोधाभिभूत
गिर पड़ा है नीचे अंगूठी क़ा जड़ित नगीना
घायल होगया वह सारा माहौल
जलती भट्ठी में आकुलित है एक फ़क़ीर
तुम बोलना मधुबोल शीर्ष खिड़की पर बैठकर
थके हुए पहुँचोगे तनिक रात भर यहाँ ठहरना।'

'त्यो'ल'–पृ०–18

कश्मीरी मूल रूप

–'मकाना खोंश यिवुन र्‌योशज़न कुनुई ज़ोन
छु ओन्द पोख बेबसी हिन्ज़ दास्ताना
सो'तुर आंगुन ज़ुंच़न हुन्द ज़ून वरशुन
च़खूॅ गोमुत शराफ़त कुई जहाना
छे' नॉरन दग तुॅ वोलान बीनुॅ बीना
वसिथ प्योमुत छु वाजे हुन्द नगीना
सु माहोलुई अमा छो'कुॅ दॉव गोमुत
फ़क़ीरा नारुॅ गजि मंज़ आवस्योमुत
च़ुॅ शेरॅचि दारि प्यठ बूल्या करखना
थकिथ वातक शबाह अति अख बरखना।'

यह तो मेरा आज है, मेरा वर्तमान। पर भूत ऐसा न था। मैं ने मातृभूमि की छत्र छाया में सुखद जीवन के आनन्द मय क्षण भी व्यतीत किये हैं। इसी लिये तो आज उन की स्मृति मात्र से हृदय काँप उठता है, ऐसा लगता है कि अकस्मात् सपनों की राजधानी में तुषारपात हुआ और सब कुछ देखते ही देखते झुलस गया :–

–'चिड़ियों का परस्पर चौंच मारना जशन कौओं का
फिसलते उतरना मिट्टी के टीले से घांस का पूला जलाना
वह दिनभर घूमते रहना नहीं चाह किसी की
आना जाना और रोक नहीं किसी को कोई।'

'त्यो'ल'–पृ०–19

कश्मीरी मूल रूप

–'च़्रयन हुँन्ज़ दाँखुॅ दोखँा कावुॅ जशना
वसुन रुॅकने लमस ज़ालुन सु फर्ववा
सु फेरुन दॉई दोहस कुनि कुई न शौख़ा
अचुन नेरुन तुॅ कॉन्सी काँह नुॅ रोका।'

यही सोचते सोचते कवि अकस्मात् गहन चिन्तन में डूब जाता है। उसे लग रहा है कि शायद हम आनन्द और सुख भोगते पथ–विमुख हो गये थे। कहीं अहंकार ने हमें आकाश–कुसुम चुनने के लिये उकसाया और हम हवाई क़िले बान्धने में व्यस्त रहे। शायद किसी की नज़र लग गई इस देश के देशवासियों पर – नैतिक मूल्यों पर, बन्धुत्व की भावना पर, आत्मविश्वास पर, निष्कपट व्यवहार पर, सद्भावना पर, सहनशीलता पर, त्याग और बलिदानमय व्यवहार पर, कुलमिला का कश्मीरियत पर। परिणामस्वरूप आज सब की मुखाकृति पर ग्रहण लग चुका है। कवि, कवि कर्म से हट कर एक गहन दार्शनिक चिन्तक की भूमिका निबाहते हुए वस्तु स्थिति का आकलन इस प्रकार करते हैं :–

–'मित्रो! बहुत कठिन है सच्चाई को समझना
अपने ही घर को लूट के ले जाना है यारो
क्या उपदेश दूँ तुझे ज्ञात है सब कुछ
कहीं दर्प–सिहं तुझे पटक के ना रख दे।
यदि ग्रस लिया लोभ ने तो कुछ नहीं पाओ गे
आत्माभिमान को बीच बाज़ार में छोड़ा नहीं जासकता
ज्ञानी जन की महत् प्राप्ति है अहंभाव को खोना
प्रबुद्ध मनुष्य को अहं छोड़ना होगा बीच तमस में
अहं ही तो है किसी के हेतु प्राण निछावर करना
तपस्या रत रह कर अहंभाव है पारा (सीमाब) गलाना।'

'त्यो'ल'–पृ०–20

कश्मीरी मूल रूप

–'पज़र ज़ानुन स्यठाह छुई क्रूठ यारो
गरस पनुॅनिस करून छुई लूट यारो
नसीयत कया करै छुख पानुॅ वॉतिथ

ग़रूरुक सूँह यिनो थावी चे' च़ॉपिथ।
अगर लूबन रोटुख के'न्ह छुई न प्रावुन
अहम् मंज़ बाज़रस मा शूबि त्रावुन
अहम् रावुन लबुन छुई गोशदारस
अहम् गटि मंज़ छु त्रावुन गाश ग़ारस
अहम् ग्व कॉन्सि बापत पान मारुन
अहम् तपसी करिथ पारुद छु कारुन।'

राजहंस से वार्तालाप करते हुए कवि बीच में कथा की उकताहट (Monotony) को मिटाने के हेतु वच़न गीतों और नग़्मों की सृष्टि कर के कहीं अम्न और शान्तिदूत की भूमिका निबाहते हैं तो कहीं शब्दों के माध्यम से ऋषिभूमि कश्मीर का एक रेखाचित्र खींच देते हैं। हर स्थिति में वस्तुतः कवि के मानस रूपी उत्स से प्रवाहित देशप्रेम की वेगवती धारा दग्ध हृदयों को सींचने का प्रयत्न करती हुई दिखाई देती है।

अर्जुनदेव मजबूर एक कुहनः मश्क़ (अनुभवी, चिराभ्यस्त) कश्मीरी शाइर हैं जिन्हें आज भी अपनी मातृभूमि से असीम लगाव है। यहाँ के कण–कण से प्यार है, यहाँ की हर अदा पर वे निछावर हैं और यहाँ के गोशे गोशे में उसे अपने हृदय की धड़कन सुनाई देती है। उत्कट देश प्रम की यह भावना महजूर–आज़ाद युग में कश्मीरी जन मानस को आन्दोलित कर रही थी और विस्थापन की व्यथा झेलते आज यही देश प्रेम की भावना हमें आठ आठ आँसू रोने के लिये विवश करती है। उन के विचारानुसार जन्म माता और मातृभूमि में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं, दोनों जीवन को पुष्ट करने में समान भूमिकाएँ निबाहती हैं।[1] शुभ की कामना करते हुए कवि मातृभूमि के लावण्यमय स्वरूप की एक दिलकश तस्वीर यों खींचते नज़र आते हैः–

–'पत्ता पत्ता एकत्र कर लो पत्तों को
अमन से पुनः ऋषिवाटिका को महका दो
दूर पड़े जो उन्हें बुलाता आया मैं
पुनः वसन्तोत्सव मनाता आया मैं
शालिमार एवं नामदारों का शहर

1– 'अपने घर और मातृभूमि की स्मृति आत्मा को छिन्नभिन्न कर रही है। आकर्षक बात यह है कि अधिकांश लोगों का कोई दोष नहीं।' 'त्यो'ल'–अर्जुनदेव मजबूर–जानकारी–पृ०–8

माँझियों लघु नाविकाओं का शहर
प्रफुल्लित मस्त उद्यानों का शहर
सम्पन्न बाज़ारों गोशवारों का शहर
पर्वतांक में पद्म–पुष्पों की माला पिरोता शहर
सुवदनी चन्द्रमुखियों का शहर
बालकुल्या तट से लगी डल नाविकाओं का शहर।'

'त्यो'ल'–पृ०–22–23

कश्मीरी मूल रूप

–'वॉथरुॅ वॉथरुॅ पनवॉथुॅर सोम्बरॉतव
अमन सूॅत्य त्रृष वॉर बेयी मुशकॉवतव
दूरि प्यमत्यन नाद लायान आस बो
बेयि तिथै पॉठ सोन्त छावान आस बो
शालमारन नामदारन हुन्द शहर
नावुॅ हॉन्ज़न चाकुॅ वार्यन हुन्द शहर
गंज बाज़र गोशवारन हुन्द शहर
फोजमुचन मस्तानुॅ वारॅयन हुन्द शहर
बालुॅ खोनि मंज़ मालुॅ पम्पोशन करान
खूब रोयन माहजबीनन हुन्द शहर
मॉर बॅठि बॅठि डल शिकारयन हुन्द शहर।'

आज भी कवि बराबर यादों की दुनिया में खो जाता है और रह रह कर कभी कोयल के मधुबोल तो कभी महलखानों में अप्सराओं की मीठी तान, डल झील में नाव खेते माँझिन की गुहार तो कभी देवस्थलों में स्तुतिपाठ की अनुगूँज उस का हृदय मोह लेती है और उसे व्याकुल भी कर देती है :–

–'ऊँची अटारी पर किसी ने संध्या का दीपक जलादिया
माँझिन गोद में लिये दुलार रही निज वत्स को
ख़यालों में खोया मैं पहुँच जाता हूँ घर
डाल पर बैठी कोयल की कुहू कुहू सुन रहा हूँ
भोज पत्र–पोथियों में ढूँढ लेना कोई अच्छा नुसख़ा
सारे शहर में टोह लगा कर ढूँढ के लाना श्री भट्ट को।'

'त्यो'ल'–पृ०–25

कश्मीरी मूल रूप

—'ज़ूनुँ डबि कॉम ताम सन्ध्या चोंगँ ज़ोल
हाँज़न्या कोछि मंज़ बरान पोत्रस छि लोल
मंज़ ख्यालन बुँ गरै वातान छुस
कुकलि गूगू प्यठ लंजन बोज़ान छुस
बुरज़ुँ पोथ्यन वुछतुँ नोस्ख़ा काँह ज़बर
श्री भट्टाह छ़ॉरिथ अनुन सोरुई शहर।'

दियेगये उदाहरण में अन्तिम प्रयोग अत्यतं सुन्दर एवं अर्थवान बन पड़ा है। आज बड़शाह ही नहीं सारा कश्मीर रोगग्रस्त है। रोग निवारण के हेतु देसी इलाज की सख़्त ज़रूरत है और इसके लिये आज श्री भट्‌ट को तलाशना होगा। श्री भट्‌ट जिस ने बड़शाह को रोगमुक्त कर के अपने जाति बन्धुओं को पुनः सम्मान पूर्वक कश्मीर में रहने का आधिकार दिलवाया था।

विचारों की दुनिया में खोकर कवि के मानस पटल पर देश विभाजन का फ़्लैश कौंध उठता है। क्यों बट गया यह देश। राजनेताओं ने उस समय सूझबूझ से काम क्यों नहीं लिया। देश का स्वतंत्र होना आवश्यक था, बँट जाना आवश्यक नहीं था। अगर ऐसा न हुआ होता तो आज कश्मीर गुलिस्तान से बयाबान न बन गया होता। कवि इतिहास की इस कड़वी सचाई पर चोट करते हुए इसे 'हिमालियन भूल' मानते हैं क्योंकि आज वही ज़हर कश्मीर की नसों में फैल चुका है और बन्धुत्व, सौहार्द्र एवं सद्‌भावना जैसे व्यवहारी शब्द अपनी अर्थवत्ता (Significance) खो चुके हैं। भविष्य में समय ऐसा अवश्य आये गा जब कश्मीर में नवजात पीढ़ी अपने बुज़ुर्गों से पूछे गी कि ये खण्डहरनुमा सांस्कृतिक विरसे अपने वक्ष के भीतर किस जाति—विशेष के इतिहास को छिपाये बैठे हैं – हमें विस्तार से समझाइये। सन् 1947 ई॰ के देश विभाजन पर चोट करते हुए कवि लिखते हैं :—

—'शासन करने वालों ने आरी चलायी माँ के वक्षस्थल पर
मुक्त कराकर छील लिया माथा उस का
वध किया कबीर और नज़ीर के देश का
शरद और खुसरो को गहरा छेदा भाले से

नानक की आत्मा को कँपा दिया सड़कों पर
नष्ट किया गंगोजमुन के तहज़ीब को
लाखों की संख्या में बेघर होकर घर छोड़ चले गये
तड़प उठी फटन (दरार) नये हिन्दुस्तान की।'

'त्यो'ल'–पृ०–29

कश्मीरी मूल रूप

–'हुकुमरानौ लितुँर लॉज माजि सीनस
करिथ आज़ाद द्यल तुलह्यस जबीनस
कबीरुन तय नज़ीरुन देश मोरुख
शरद तय खुसरोहस सोनॅ नेज़ुँ तोरुख
रुहे नानक वतन प्यठ काँपनोवुख
सु गंगो जमनकुई तहज़ीब गोलुख
लछन हुन्द लछ गछ़िथ बे गर, गरे द्राय
नविस हिन्दोस्तानस चाक तेल्याय।'

राजहंस से निवेदन करते हुए कवि कहता है कि घाटी में उड़ान भरते समय अवश्य मेरी नगर निवासी प्रिया से मिलना जिस के हुतु मैं ने अपना यौवन निछावर किया है। विस्तार पूर्वक उसे मेरी व्यथा कथा कहना और उस की हर बात को ध्यान पूर्वक सुनना। कवि अपनी प्रेम कहानी के कुछ भावुकता प्रधान अशं राजहंस को सुनाता है और प्रिया की प्रशंसा करते हुए जीवन की महान उपलब्धि प्रियाकर्षण अर्थात् इश्क़ को अलौकिक मंज़िल तक पहुँचा देता है। कवि को दृढ़ विश्वास है कि प्रेम जीवन की महानतम उपलब्धि है और प्रेम के बिना जीवन जीना व्यर्थ है। यहाँ लम्बी प्रतीक्षा तो जानलेवा अवश्य है पर इन्तिज़ार की हर घड़ी में इक़रारे मुहब्बत का एहसास जीने के लिये विवश करता है। यह तो सर्वविदित है कि 'दर्द का हद से गुज़र जाना है दवा होजाना'। शाइर इसे दिव्यानुभूति से कुछ कम नहीं मानता :–

–'मुहब्बत ज़िन्दगी को देता है अर्थ
निर्मल करके आत्मा को बना देता है शीशा
देना समाचार और पूछना कुशलक्षेम
क्या उसी पुरानी रीत (साज सज्जा) से चलती हो

तुम्हारा नाम महका देता है रोम रोम
तुम दीर्घायु हो, प्राण निछावर तुझपर।'

'त्यो'ल'–पृ०–30

कश्मीरी मूल रुप

'मुहब्बत ज़िन्दगी छुई मानि बख़्शान
करिथ सेकल रुहुस ऑना बनावान
खबर वॉनज़्यस तुं दापज़्यस वॉरु छख सॉ
पकान प्रानी तमी अनहार छख सॉ
छु रुम रुम मुशॅकुनावान नाव चोनुई
चं लॉगनय आय ज़ू छुई पेश म्योनुई।'

राजहंस वह तुम्हारा ख़ूबस्वागत करेगी और आतुर आकुल अवस्था में ध्यान पूर्वक मेरे सन्देश को सुने गी। कुछ अपनी भी कहे गी। कुछ वख़्ते सितम भी सुनाये गी और कुछ ज़माने की बेराहरवी पर आँसू भी बहाये गी। राजहंस! मैं हाथ जोड़ कर तुम से निवेदन करता हूँ किः–

–'इजाज़त लेकर उन की कोई तस्वीर ले आना
कोई स्मृति चिह्न होशियारी से बटोर लाना'

'त्यो'ल'–पृ०–32

कश्मीरी मूल रुप

–'इजाज़त ह्यथ तसुन्द तस्वीर ऑनज़्यम
निशाना कॉह चुं बातदबीर ऑनज़्यम।'

वस्तुतः कवि यह समझ नहीं पा रहा है किः–

–'जाने क्यों मानव मूल्यों में ख़स्तगी आई है
सारा जहाँ क्यों अटकाव में उलझ गया है
ऋषियों के कुछ वचन चुन के ले आना
मैं प्रम के दसवाने [1] पहन प्रतीक्षारत रहूँगी।'

'त्यो'ल'–पृ०–32

कश्मीरी मूल रुप

–'दो'दुर इनसॉन कदरन क्याज़ि चामुत

1– कलाई में बान्धने वाला एक आभूषण

ज़मानस सॉरसुई खुर क्याज़ि आमुत
रॅशन हन्दुॅ केहँ वच़न ऑनज़्यम च़ चॉरिथ
ब्व प्रारै लोलुॅ की दसवानुॅ पॉरिथ।'

कवि इतिहास की एक और सच्चाई को उजागर करते हुए राजहंस को सावधान करता है। घाटी में उड़ान भरना तो जान हथेली पर ले कर चलने के सम्मान है। यह तो आतंक का युग है और कहीं भी किसी भसी समय कुछ भी हो सकता है। रौदँ कर मसल डाला है कश्मीरियत को इस आंतकी वन्यजीव ने। आश्र्चाय इस बात का है कि सब कुछ धर्म के नाम पर हो रहा है इस धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में। भीषण अग्नि दहन से आज मातृभूमि का चप्पा चप्पा झुलस रहा है। देसी आंतकियों के साथ मेहमान आंतकी चाहे वे अफ़गानी हैं या पाकिस्तानी, इराक़ी हैं या ईरानी, सऊदी अरबिया के हैं या सूडानी, लादीनी हैं या तालिबानी सब ने मिलकर यहाँ हाहाकार मचा रखा है। कवि इस हाहाकारी युग में एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी राजहंस पर डाल देते है अतः बार बार सावधानी बरतने की बात कहते है:–

–'परेशानी कश्मीर के भाग बदी है
(या) परेशानी ने ग्रस लिया कश्मीर को
भीषण जीव बनों में घुस आये हैं
चलरही हैं गोलियाँ कहीं शिकार न हो जाना
कहीं पंखों में त्राश न लग जाये बेकार हो जाओगे'

'त्यो'ल'–पृ०–31

कश्मीरी मूल रुप

–'परेशॉनी कशीरे बागि आमुॅच़
व्यखुॅच़ ज़ाथा वनन अन्दर छि चामुॅच़
चलान छय गोलि यिनुॅ सॅ मारुॅ स्पनख
पखन यिनुॅ क्रिपुॅ लगी नाकारुॅ स्पनख।'

स्थिति यह है कि:–

–'सुन्दर नगरों में घूम रहे हैं भीषण दैत्य
करते हैं लूट सतीत्व हरण निकल जाते हैं
वासना की आग धधक रही है लुट रही है सादगी

नशे में है धुत्त पहन के मौत का अंग्रेज़ी पहनावा
ज़माने के मुख पर कालिख लगे गी, क्यों लिखा है
ललाट पर अंकित है पूर्ण प्रकाश में विनाश।'

'त्यो'ल'–पृ॰–34

कश्मीरी मूल रुप

–'सोन्दर नगरन अन्दर द्राँठाक फेरान
करिथ लूठा मुहित असमत छि नेरान
छु नफसुक नार तेज़ान सादगी लूट
नशस अन्दर छि लॉगिथ मोतकी सूट
ज़मानस क्याज़ि लीखित रो(य) सियॉही
ड्यकस लीखित छि गाशस मंज़ तबॉही।'

सड़क पर पड़े लावारिस नवजात शिशु को देख कर आश्चर्य चकित नहीं होना। चाहे कुछ भी हो आख़िर इस नन्ही जान का क्या दोष। मासूमियत इस के चेहरे से टपकती है। कवि इस बच्चे के करुण–क्रन्दन को सुन कर विह्वल हो उठता है और लोक गीतो की लय में इसे कल्पना के झूले में झुला कर चुप कराने का या सुलाने का भरसक प्रयास करता है:–

–'उस नवजात को कौन छोड़ के चला गया है
किस ज़ालिम ने इतना जी कड़ा किया है
दुलारुँ गोद में तुझ को हृद्यहारी! मेरे प्रियवत्स
इस वीरान जगह पर क्यों आये हो
घुँघरु बन्धे पालने में झुलाऊँ तुझ को
अनन्तनाग से काठ अश्व लाऊँ तेरे हेतु
कौन कराये गा माँ का स्तन पान तुझे
भीतरी छत से लटक रहे पालने में कौन तुझे सुलाये गा।'

'त्यो'ल'--पृ०–33

कश्मीरी मूल रुप

–'हु ज़ाशुर कुस सना त्रॉविथ छु द्रामुत
कमिस सन ज़ॉलिमस युथ वोन्दुॅ आमुत
करॉयो गूरुॅ हा जानानुॅ गोबरो
चॅ यथ वॉरान जाये क्याज़ि आखो

रोने मंज़लिस अन्दर होहो करॉयो
अनन्तनागुक ब्व वतने गुर अनॉयो
चे़ ऑसस माजि हुँज़ बब कुस सॉ त्रॉवी
गुगॅमंज़लिस अन्दर कुस मालि सॉवी।'

देश की आर्थिक दुर्दशा से भयाक्रान्त कवि भविष्य के प्रति निराश हो उठता है। आतंक ने इस देश की अर्थव्यवस्था को ही छिन्न भिन्न कर डाला। गृह उद्योग तो नष्ट हो गये और पर्यटन अद्योग तो एक दम ठप पड़ा है। कारीगर बेकारी और भुखमरी का जीवन व्यतीत करने को विवश हैं और 'कश्मीरी आंतकी है' इस विश्वास ने व्यापारी वर्ग के लिये देश के अन्य क्षेत्रों में व्यापार की सम्भावनाओं को एकदम समाप्त कर दिया। विश्वास अविश्वास में बदल गया और सद्‌भावना ने मात्र औपचारिकता का रुप ग्रहण किया है। कश्मीर के विभिन्न गृह अद्योगों से जुड़ा व्यापारी वर्ग केवल राह तकते रह गया । अर्थ व्यवस्था दिन प्रति दिन शक्तिहीन हो रही है। विकास की दिशाएँ हर क्षेत्र में अवरुद्व हैं। प्राकृतिक संसाधनों का निरंतर दोहन हो रहा है। एक प्रकार से पुरुष प्रकृति विनाश में जुटा है। बन्दूक के आतंक ने इंसान को गूँगा बना दिया है। नकबपोश आतंकी के सम्मुख इंसाफ़ रुसवा (लांछित) होकर दम तोड रहा है। कवि के शब्दों मेंः–

–'यह देश जहाँ पानी के खज़ाने भरे पड़े हैं
पर प्यसों की जीभ जल जाती है यहाँ तृषा से
महानगर को घेर लिया है जालों ने
यद्यपि उन्नति का आभास हो जाता जगह जगह
पर घरों में भान होता है कि मातम बिछी है
द्‌वेष पीडित हैं परस्पर मालूम पड़ता है
जाने सभ्यता कहाँ उलझ गई उलझन में
घरों में प्रवेश करने पर भी घुम हो जाता ठिकाना
काली रातों में तो इंसान हो जाता परवश
कुम्री और कस्तूर[1] अब यदाकदा ही बोलते हैं।'

'त्यो'ल'–पृ०–35–36

1– 'कस्तूर'–कोयल जैसा एक मधुर भाषी पक्षी जो अपने बोल की मिठास के लिये प्रसिद्ध है।

कश्मीरी मूल रूप

—'यि मुलखा आबुॅ की बॉरि बॉरि ख़ज़ानै
मगर अति त्रेशि हतिनुई ज़्यव दज़ानै
महा नगरन छु वोलमुत नाल हाये
तरक्क़ी योद छि बासान जायि जायै
गरन अन्दर छि बासान दुॅहि छ़यवै हिश
छि बासान पानुॅ वुॅन्य अज़ सारिनुई रुॅश
छु तहज़ीबस गोमुत कुसताम वकानै
गरन अन्दर अचि़थ रावान ठिकानै
स्याह रॉच़न अन्दर इंसान वोलान
कुमिर कस्तूर [1] खालुॅई वोन्य छि बोलान।'

ऐसा जीवन जीने से तो मौत बेहतर है। कवि अवसादग्रस्त अवस्था में मृत्यु को आह्वान करता है। 'कामायनी' में भी मनु चिन्ता ग्रस्त अवस्था में मौत की नींद सोने को उद्दत हो जाता है:—

—'मृत्यु अरी चिर—निद्रे! तेरा
अंक हिमानी—सा शीतल,
तू अनन्त में लहर बनाती
काल—जलधि की—सी हलचल
अन्धकार के अट्टहास —सी,
मुखरित सतत चिरतंन सत्य,
छिपी सृष्टि के कण— कण में तू
यह सुन्दर रहस्य है नित्य।'[1]

विक्षुब्धावस्था में इस प्रकार की नकरात्मक प्रवत्तियों का ज़ोर पकड़ना स्वाभाविक है। आख़िर कब तक चुप रहा जा सकता है। हर चीज़ की अपनी निश्चित सीमा होती है। आतंक अथवा किरायें के बन्दूक ने हम से सब कुछ छीन लिया। हमारे भीतर का इंसात कब का मर चुका है। हिंसक प्रवृत्तियों का सर्वत्र बोलबाला है। मसान निरन्तर धूम्राच्छादित दिखाई देते हैं और कबरिस्तानों की सीमाओं में विस्तार हो रहा है। अपने खोये हुए विरसे पर मातम करते हुए कवि लिखते है:—

1— 'कामायनी'— जयशंकर प्रसाद—चिन्ता सर्ग—पृ०—28—29 संस्करण सं० 2018वि०

—'गर्वित होकर संतोष सादापन कहाँ गया
आशापूरित वह साहस और आवेश कहाँ गया
इन सारे भयंकर हालातों को बताकर
सुन के मेरा निष्पाप वक्ष विदीर्ण हुआ
उस पर्वत के ऊपर चढ़कर छोड़ देना मुझे
गिद्ध और हिंस्र जन्तुओं को सौपँ देना मुझे।' 'त्यो'ल'—पृ०—37

कश्मीरी मूल रुप

—'ग़रुरस मंज़ स्यज़र सन्तोष कोतग्व
वोमेदन हुँज़ स्व ह्यमत जोश कोतग्व
वनिथ हालात यिम सॉरी खनरनाक
यि बूज़िथ म्योन मॉसुम सीनुँ ग्व चाक
खसिथ हुथ संगरस प्यठ त्रावसॉ मेय
ग्रदन जानावरन पुशराव सॉ मेय।'

कवि को पूर्ण विश्वास है कि आज की इंसान दोस्ती बस एक छलावा है और कुछ नहीं। इंसान से बहुत बेहतर तो जानवर (पशु) है। सम्भव है उस में तनिक दया की भावना जाग उठे। आज मनुष्य हिंसक पशु से भी बहुत आगे निकल चुका है और वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य अपना आहार स्वयं बन जाये गा। आँखें फोड़ना, आरे पर चीरना, पेड की मोटी टहनी पर लटकाना, कार के पीछे बान्ध देना और कार को सरपट भगाना, जीतेजी एक एक अंग (शरीर के) काट देना, दो कान काटना, पेट फाड़ कर अतंडियाँ बाहर निकालना, बिजली का शॉक देना, गोलियों से छाती भूनना और जाने क्या क्या? इस से बेहतर है कि अजगरों के साथ दोस्ती की जाये अथवा रीछ या सिंह से याराना जोड़ दिया जाय। सम्भव है कि जानवर के भीतर देवता जाग उठे, यहाँ आदमी के भीतर राक्षस जाग उठा है :—

—'अजगरों से दोस्ती बेहतर तो है
हिम—मानव मेरी रक्षा करें गे, दुलारें गे
फ़िरिश्ते झोली में न्याय भर लें गे
कुदरत की यह पुस्तक पूरी खोल के
पुरानी सच्चइयों को पुनः सँभाल के रख लूँगा।'

'त्यो'ल'—पृ०—38

कश्मीरी मूल रूप

—'छि बेहतर दोस्ती अज़ ऑछदरन सूँत्य
सूँहन तय हापतन जानावरन सूँत्य्
रछन मे' शीनुॅ मोहनिव गूरुॅ करनम
फरिश्तै जोलि मंज़ इंसाफ़ बरनम
यि कोदरतची किताबा वारुॅ मुचरिथ
थवक प्रॉनी पज़र बेयि वारुॅ शीरिथ।'

और अतं में कवि अपने आप पर नियंत्रण नहीं रख पा रहा है अतः व्यथितावस्था में अश्रुओं के अनमोल मोती अपने दृढ़ संकल्प पर निछावर करते हुए पुकार उठता है :—

—'चित्त की काया में पीड़ा है अगुंल—अगुंल
जन्म के तृणपुंज में लग गई आग
कौन क्या कहे गा सब हैं अनजान
हे राजहंस! बता, तब क्या होगा।'

'त्यो'ल'—पृ०—40

कश्मीरी मूल रूप

—'च़्यतुॅचे काययि दग छम हनि हनि
ज़न्मुचि गासुॅ बनि गोण्डनम नार
पयिरोस सॉरी कुस क्या सॉ वनि
त्यलि क्या बनि वन राजहाँज़ो।

इस प्रकार इस लम्बी कविता का अन्त हो जाता है पर हमारे ज़ेहन (ज़ेहन) के द्वार खुल जाते हैं और शुरु हो जाती है एक लम्बी बहस कि हमने क्या खोया और क्या पाया।

1. इस 'त्यो'ल' अर्थात् मनस्ताप अथवा भीतरी जलन ने हमें जीना सिखाया, कम से कम जीवन जीने की समझ दी। हमारे विगत को वर्तमान के साथ जोड़ कर हमें भविष्य के प्रति आशावान बना दिया।

2. इस 'त्यो'ल' का काँटा जितना ही गहरा चुभता रहे गा और निरन्तर चुभते रहना चाहिये, उतना ही हमारे अस्तित्व की रक्षा के लिये लाभ प्रद होगा।

3. हम युगों तक सोते रहे और बहुत अधिक सोना तो मृत्यु का लक्षण है।

4. 'त्यो'ल' की मानसिक पीड़ा ही हमें परस्पर बन्धुत्व के रिश्ते में जोड़ देगी और यही समय की सब से बड़ी आवश्यकता है। हमें एक बन कर जीना नहीं आता लेकिन एकता का नाटक ख़ूब खेलते है। ज़िन्दगी के रंगमच पर कुशल अभिनेता की भूमिका निबाहने में हम असमर्थ हैं लेकिल स्वाँगभरना कोई हम से सीखें। घाव जितना हरा हो पीड़ा भी उतनी ही तड़फड़ाने वाली होती है और 'त्यो'ल' का एहसास भी उतनी ही शिद्दत इख़्तियार कर लेता है।

5. एक नया इतिहास रचने के लिये आवश्यकता इस बात की है कि वस्तु स्थिति का यथार्थ बोध और कसमसाती पीड़ा जन्य गहनानुभूति की तड़प दोनों मिलकर इतिहास के यथार्थ को सही परिप्रेक्ष्य में व्यवस्था प्रदान करे। स्वर्गीय मोती लाल साक़ी के शब्दों में:–

'त्यो'ल' मजबूर साहब का एक नवीन काव्य संग्रह है। संग्रह की कविताओं का मनस्ताप उन समस्त लोगों का मनस्ताम है जिन के पाँव तले धरती खिसक गई है। ......कल के इतिहास लेखक जब आज के युग का इतिहास लिखने बैठें गे तो बाह्य जीवन के विनाश की जानकारी उन्हें बाह्य साधनों से प्राप्त हो गी लेकिन आन्तरिक विनाश और मानसिक संताप की व्यथा– कथा जानने क हेतु उन्हें सर्जनात्मक साहित्य का सहारा लेना पड़े गा।'[1]

'त्यो'ल' हमारे वक्ष में चुभा खंजर है, चुभता रहे निरन्तर ताकि हम अस्तित्व की तलाश में बिखर न जायें।

6. अर्जुन देव इतिहास की एक दुर्घटना का शिकार होकर पिछले 13 वर्षो से अस्तित्व की तलाश में भटक रहे है। नित्य नये अनुभवों से गुज़र कर वे विगत और वर्तमान के मध्य गहरी खाई को देखते ही त्रस्त हो उठे हैं। यही पीड़ा बोध उन्हें सृजन के लिये प्रेरित करता है। उन में अद्भुत सर्जनात्मक प्रतिभा है। इतिहास के यथार्थ को कविता का आधार बना कर वस्तुतः वे समकालीन कश्मीर और विस्थापित समाज की संकट ग्रस्त स्थिति का एक साथ चित्रांकन करते हैं।। एक अनुभवी माहिर कलाकार

1– 'त्यो'ल'–प्राक्कथन–मोती लाल साक़ी–पृ०–5–6

ही इस प्रकार के संकेतों से समसामयिक यथार्थ को भावी पीढ़ी के लिये सुरक्षित रख सकता है। यथार्थ से जुड़े सांकेतिक अर्थवान शब्द–चित्रों के चन्द उदाहरण देखने योग्य हैं:–

(1) 'कुम्री और कस्तूर अब यदा कदा ही बोलते हैं।'
(कुमिर कस्तूर खालुँई वोन्य छि बोलान) पृ०–36

(2) 'जाने सभ्यता कहाँ उलझ गई उलझन में।'
(छु तहज़ीबस गोमुत कुसताम वकानै) पृ०–36

(3) 'सुन्दर नगरों में घूम रहे हैं भीषण दैत्य'
(सोन्दर नगरन अन्दर द्राँठाक फेरान) पृ०–34

(4) 'नानक की आत्मा को कँपा दिया सड़कों पर'
(रुहे नानक वतन प्यठ काँपनोवुख) पृ०–29

(5) 'जड़ीभूत हुआ है शराफ़त का जहान'
(चख़ूँ गोमुत शराफ़त कुई जहाना) पृ०–18

(6) 'लेकिन बसन्त को क्यों लूट लिया है पहले माघ ने'
(अमा सोन्तस छु कवुँ फोरमुत गो'डय माग) पृ०–26

(7) 'नष्ट किया गंगोजमुन के तहज़ीब को'
(सु गंगोजमन कुई तहज़ीब गोलुख) पृ०–29

(8) 'काँटे ही काँटे क्यों उपजे हैं सारी भूमि पर'
(काँडी काँड क्याज़ि खतिमुत भूमि सॉरिस) पृ०–34

(9) 'करते हैं लूट सतीत्व हरण निकल जाते हैं'
(करिथ लूठा मुहित असमत छि नेरान) पृ०–34

7. पिछले तेरह वर्षो से कश्मीर और कश्मीर वासी दोनों अशान्त दिखते हैं। आज स्थिति यहाँ तक पहुँची है कि सम्पूर्ण जम्मू कश्मीर प्रदेश के रहने वाले लोग अशान्त है, भयाकुल हैं, रक्तरंजित हैं। विनाश का तांडव सर्वत्र व्याप्त हैं। दिल हिला देने वाली घटनाएँ रोज़ घट रही है। जीवन जीना दूभर हो गया है। लेकिन इस से भी भयंकर स्थिति यह है कि हम ने अपनी मानसिक शान्ति को खो दिया है। व्यवस्था की शान्ति और मन की शान्ति परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हैं। आतंक ने ऋषि वाटिका को ही अशान्त बना दिया है। कवि अर्जुन देव पुनः शान्ति स्थापना के हेतु कवि कर्म के साथ साथ शान्ति दूत की भूमिका निबाहते हुए राजहंस को तप–ऋषियों

के आशीर्वाद स्वरुप शान्तिवरदान पाने की ताकीद करते हैं:—

—'कश्मीर के हेतु शुभ आशिष् और शान्ति मांगों
भर जाये ज़ख्म हरे और मिट जायें सारे ग़म।'

'त्यो'ल'—पृ०—15

<u>*कश्मीरी मूल रूप*</u>

—'कशीरे किच़ मंगुख ऑही तुं शॉन्ती
शफ़ा ज़ख़मन, ग़मन यकसर दफॉई।'

और देश वासियों से सविनय निवेदन करते हैं किः—

—'पत्ता पत्ता बटोर लो इन पत्तों को
अम़न से पुनः महका दो ऋषि वाटिका को।'

'त्यो'ल'—पृ०—22

<u>*कश्मीरी मूल रूप*</u>

—'वॉथुँ वॉथ्रै पनुँ वॉथ्र सोम्बरॉवतो
अम्न सूॅत्य ऋषवॉर बेयि मुशकॉवतो!'

वस्तुतः कवि अपने इस स्वप्न को साकार रुप में फलित देखना चाहते हैं। बात तो ठीक है लेकिन अर्जुन देव कवि नहीं रह पाते विनोबा के चेले बन जाते हैं। महमूद गज़नवी ने जब सोमनाथ मन्दिर पर अन्तिम बार धावा बोल दिया तो सैकडों की संख्या में माल—पूआ खाने बाले पुजारी गण शान्ति पाठ ही करते रह गये।

8. कवि अर्जुन देव मजबूर एक मंझे हुए भाषा पण्डित हैं। आप कई भाषाओं में एक साथ लिखते है। शब्दों और शब्द खण्डों की अन्तर्रात्मा से आप भली भाँति परिचित हैं। प्रस्तुत लम्बी कविता में कई भाषा प्रयोग पाठक का ध्यान बरबस अपनी ओर आकर्षित करते हैं।वस्तुतः प्रयोग में ही अभिव्यक्ति का सौन्दर्य निहित रहता है! देखना यह है कि अनुभूति को आप किस अन्दाज़ में आकार प्रदान करते हैं। उड़ान भरने के लिये आप को कल्पना के पंख चाहिये। सर्जन में कभी एक हल्के आघात से ही समाँ बँध जाता है और कभी निजी जानकारी और अनुभव के आधार पर रंगों के झरमुट में कुछ रंग खिल उठते है। सब कुछ प्रयोग कर्ता अथवा रचनाकार की तूलिका पर निर्भर करता है। चन्द भाषा प्रयोग देखने योग्य है :—

(1) —'अमर हो जाओ गे साहस बनाये रखना
वही जीवित रहता है जिस में हो प्रबोधन शक्ति।' पृ०—13
(अमर स्पनख चुॖ कॉयिम थविज़ ह्यमथ
छु रोज़ान ज़िन्दुॖ सुई यस आसि प्रज़नथ।)

(2) —'चिड़ियों का परस्पर चौंच मारना जशन कौओं का
फिसलते उतरना मिट्टी के टील से घास का पूला जलाना।' पृ०—19
(चर्यन हुॅन्ज़ दाँखुॖ दोखाँ कावुॖ जश्ना
वसुन रुॅकने लमन ज़ालुन सु फर्ववा)

(3) —'कही दर्प—सिंह तुझे पटक के ना रख दे
यदि ग्रस लिया लोभ ने तो कुछ नहीं पाओ गे।' पृ०—20
(गरूरुक सुॅह यिनो थावी चे' चॉपिथ
अगर लूबन रोटुख के'न्ह छुई न प्रावनु)

(4) —'ऊँची अटारी पर किसी ने सन्ध्या का दीपक जलादिया
माँझिन गोद में लिये दुलार रही निज वत्स को।' पृ०—25
(ज़ूनुॖ डबि कॉम ताम सन्धया चोंग ज़ोल
हाँज़न्या कोछि मंज़ बरान पोत्रस छि लोल।')

(5) —'यह देश जहाँ पानी के खज़ाने भरे पड़े हैं
पर प्यासों की जीभ जल जाती है यहाँ तृषा से।' पृ०—35
(यि मुलखा आबुॖ की बॉरि बॉरि खज़ानै
मगर अति त्रेशि हतिनुई ज़्यव दज़ानै।)

(6) —'भोज पत्र—पोथियों में ढूँढ लेना कोई अच्छा नुसख़ा
सारे शहर में टोह लगा कर ढूँढ के लाना श्री भट्ट को।' पृ०—25
(बुरज़ुॖ पोथ्यन वुछ तुॖ नोस्खा काँह ज़बर
श्री भट्टाह छ़ॉरिथ अनुन सोरुई शहर।)

(7) —'जाने कितने काले दहन—दाग़ अभर आये हैं पृथ्वी पर।' पृ०—34
(छि खतिमुत नारुॖ तॉत बुतरॉच़ कॉत्याह)

(8) —'घुँघरु बन्धे पालने में झुलाऊ तुझ को
अनन्तनाग से काठ अश्व लाऊ तेरे हेतु।' पृ०—33

(रोने मंज़लिस अन्दर हो हो करॉयो
अनन्तनागुक बुॅ वतने गुर अनॉयो।)

(9) –'किसी छोटे चश्मे पर क़रार कर के' पृ०–10
(करिथ कुनि नागुॅ रोबजे प्यठ करारा।)

(10) –'यदि किसी झरती जलधार के पास रात लग जाये
परिव्याप्त चीढ़ पर चढ़के रात और समय बिताना।' पृ०–10
(अगर कुनि आबुॅ छूलस निश लगी रात
छजल यारे खसिथ गॅंज़रॉवज़े साथ।)

9. कुल मिला कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि श्री अर्जुन देव मजबूर के काव्य संग्रह 'त्यो'ल' में संगृहीत लम्बी कविता 'त्यो'ल' वस्तुतः घाटी के समसामयिक यथार्थ से जुड़ी एक बीभत्स दुर्घटना को अपने कलेवर में समेटे हुई है। शाइर भी समाज में रह कर जीवन श्वासें लेता है, वह समाज से अलग अपनी सत्ता को अधिक समय के लिये सुरक्षित नहीं रख सकता। सामजिक जन–जीवन से जुड़ी घटनाओं–दुर्घटनाओं से प्रभावित होना तो एक स्वार्भाावक अमल (व्यवहार, कर्म) है। यही कवि के जीवन्त होने का प्रमाण भी है। जिस भयावह यथार्थ से जूझते हुए वह पिछले तेरह वर्षों से जीवन जीने के हेतु संघर्ष कर रहा है उस का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव उस की रचनाओं में कहीं सांकेतिक रूप से और कहीं स्पष्ट शब्दों में प्रतिबिम्बित है। संक्षिप्त, मार्मिक और अर्थ गर्भित शब्द चित्रों से ऐतिहासिक सच्चाई में ग़ज़ब की प्रेषणीयता आ गई है। कवि ने कहीं भी यथार्थ की अतिरंजना नहीं की है, हाँ, समय की सान पर चढ़ कर यही मधुमिश्रित सत्याधृत अभिव्यक्ति ऐतिहासिक दस्तावेज़ का रूप धारण करती है।

10. यह 21वीं शतब्दी का दौर है। आज कम्प्यूटर ने मानव के सम्मुख कई चुनौतियाँ पेश की है। जीवन द्रुत चाल से गतिमान है। मानव क्लोन (Human clone) का ज़माना बहुत करीब आ रहा है। चरम विकास के उस बिन्दु पर पहुँच कर, सम्भव है कि हम फिसल कर पत्थर–युग में पुनः प्रवेश कर लें क्योंकि हर कमाल ज़वाल पर ही समाप्त हो जाता है और यही सच कश्मीर की वर्तमान स्थिति पर लागू हो सकता है। भविष्य के प्रति आशावान रहना ही तो जीवन जीने की प्रेरक शक्ति है। अर्जुन देव मजबूर ने अश्रुसिक्त शब्दों में अपने वर्तमान को भविष्य के हेतु सुरक्षित रखने की

चेष्टा की है। स्वयं अन्हीं के शब्दों में –'यह कश्मीर तथा कश्मीरी भाषा का प्रेम ही है जो परदेस में भी मेरे चित्त के प्रवाहित सोतों को भीषण गरमी एवं भयंकर स्थलों में सरताज़ा रखता है। यह भेंट यदि पाठकों को रुचिकर लगी तो मेरा परिश्रम सफल होगा।'[1]

11. 'त्यो'ल' कविता को पढ़ कर 'त्यो'ल' की वेदना से व्यग्र हो उठना स्वाभाविक है। प्रत्येक सहृदय मानव के लिये चाहे वह पर्वत के उस पार स्वप्नजीवी बन कर रंगमहल सजाता हो अथवा पर्वत के इस पार तप्त शिलाखण्ड़ों से सर टकरा टकरा कर बंजर बयाबानों की ख़ाक छान रहा हो। आज हर कश्मीरी ने कुछ न कुछ खो दिया है। भौतिक जीवन की सुख–सम्पदा और आध्यात्मिक जीवन की आनन्दानुभूति–दोनों से हम वंचित होगये। पर्वत के उस पार तो दस दिनों में स्वप्न के फलीभूत (साकार) होने का आश्वासन दिया गया था, तेरह वर्ष गुज़र गये और पर्वत के इस पार तो लुटे–पिटे, अधिकार वंचित, निस्सहाय, वोट बैंक की शक्ति न रखने वाले विस्थापित, अपने वर्तमान को भूत के आईने में देखने का प्रयास करते हुए भविष्य की शंकाओं से त्रस्त, कभी उम्मीदों के स्वप्न लोक में विचरण करते तो कभी चित्त प्रवाहित वितस्ता में कागज़ी नाव चलाते हुए जीवन जी रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भयंकर षडयंत्रों के शिकार। न वहाँ सुख न यहाँ चैन। सर्वत्र मौत की काली छाया और उसका व्यापक विस्तार। अस्तित्व की तलाश में मानवता कलुषित होकर दम तोड़ रही है। विवश–साहस के साथ अर्जुन देव जीवन के इस यथार्थ को न केवल देख रहा है अपितु झेल रहा है। समय की चट्टान पर वह बड़े जतन से यथार्थ की तस्वीर उकेरता है और साथ मिला देता है मनस्ताप की चाशनी यानी 'त्यो'ल' की विह्वलता।

---- *** ----

1. 'त्यो'ल'–अर्जुन देव मजबूर – ज़ान–पृ॰–8

नाटककार मोती लाल क्यमू की नाट्यरचना 'नगर वोदॉस' में इतिहास और समसामयिक युग

घाटी के नामवर नाटककार, थिएटर विशेषज्ञ, निर्देशक, कश्मीरी लोक नाटक के व्याख्याता, 'बाँडनाटयम्' के रचयिता, राष्ट्रीयस्तर पर चर्चित रचनाकार, "जम्मू कश्मीर ललित कला, संस्कृति व साहित्य अकादमी" के भूतपूर्व अतिरिक्त सचिव पण्डित मोती लाल क्यमू द्वारा कश्मीरी भाषा में लिखित नाटक 'नगर उदास' (नगर वोदॉस) सन् 1997 ई॰ में प्रकाशित हुआ।

नाटक का मूलाधार कल्हण पण्डित द्वारा लिखित 'राजतरंगिणी'[1] का सातवाँ तरंग है। श्लोक नम्बर 233 से 453 तक का ऐतिहासिक कथाशं। सन् 1079 ई॰ से 1081 ई॰ तक का कश्मीरं इतिहास। नाटक के प्रमुख पात्र एवं अधिकाशं घटनाएँ ऐतिहासिक हैं।[2]

जून–जुलाई सन् 1967 ई॰ में क्यमू साहब ने नाटक लिखना शुरु किया। पहला भाग लिख कर इसे अपूर्ण छोड़ दिया। 28 वर्षों के बाद सन् 1995 ई॰ में विस्थापन की पीड़ा सहते तथा यथार्थ से जूझते लेखक ने पुनः इसे लिखना शुरु किया। संकल्प दृढ़ था और परिदृश्य अनुकूल अतः लिख कर समाप्त भी किया। ये दोनों सन् 1967 और सन् 1995 ई॰ कश्मीर के इतिहास और राजनीतिक घटनाचक्र में महत्त्वपूर्ण वर्ष माने जाते हैं। स्वतंत्रता के बाद पहली बार सन् 1967 ई॰ में कश्मीरी पण्डितों ने व्यवस्था के खिलाफ़ आवाज़ उठाई और कई दिनों तक सामाजिक अन्याय के

1– 'राजतंरगिणी'–कल्हण पण्डित, रचनाकाल–1148–49ई॰, सर एम.ए.स्टेन ने सन् 1900 ई॰ में इस का अंग्रेज़ी अनुवाद किया जो "Chronicles of the kings of Kashmir Vol I,II" शीर्षक से प्रकाशित हुआ। (लेखक)

2– 'सातवें तरंग में अनन्तदेव, कलशदेव तथा हर्षदेव एक ही वंश के तीन महत्त्वपूर्ण नरेश हैं। यह नाटक इसी तरंग के श्लोक नम्बर 233 से श्लोक नम्बर 453 पर आधारित है। सारे महत्त्वपूर्ण पात्र ऐतिहासिक विभूतियाँ हैं तथा अधिकांश घटनाँए ऐतिहासिक हैं। समय 1079 से 1081 ई॰ तक। 'नगर वो'दाऽस'–प्राक्कथन–पृ॰–11, प्रकाशन वर्ष–सन् 1997 ई॰

विरूद्ध श्रीनगर में आन्दोलन करते रहे। 'पण्डित आन्दोलन' (बटुँ अजिटेशन) के नाम से लोगआज भी इसे याद करते हैं। स्वतंत्रता के बाद पहली बार कश्मीरी पण्डित अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुआ।

सन् 1995 ई० में तो आतंकवाद अपनी चरमसीमा पर था। आतंकी स्वघोषित कर्नल मस्तगुल ने च्रारिशरीफ़ के आस्ताँ में आग लगा कर अलमदारि कश्मीर की आत्मा को ही कँपा दिया।

28 वर्ष तक क्यमू साहब नाटक को पूरा नहीं कर सके क्योंकि तत्कालीन ऐतिहासिक सन्दर्भ सूत्रों को समकाल के यथार्थ के साथ जोड़ना ज़रूरी था तभी इतिहास पुनर्जीवित हो उठता। वर्षों रचनाकार ऐसा करने में असमर्थ रहे फलतः नाटक अपूर्ण रहा।

इस नाटक का प्रमुख आकर्षण इस की ऐतिहासिक कथा में निहित है।[1] ऐतिहासिक होते हुए भी यह कथांश हमारे विस्थापित जीवन की विसंगतियों के साथ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में जुड़ा है। नाटक के मुख्य पात्र प्रतीकात्मक रूप में हमारे वर्तमान जीवन की एक एक सच्चाई को उजागर करते हैं।

मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यदि विस्थापन न होता 'नगर वोदॉस' नाटक कभी पूरा नहीं होता। विस्थापित जीवन की त्रासदी ने अनुभूति प्रवण कलाकार के सम्मुख उन समस्त स्थितियों को एक एक कर के पेश किया जिन स्थितियों से एक हज़ार वर्ष पूर्व हमारे बुज़ुर्गों को गुज़रना पड़ा। सच है कि इतिहास की पुनरावृत्ति होती है। हम सब इस बात से भली भाँति परिचित है कि यह हमारा पहला विस्थापन नहीं है। कई बार क्रूर शासकों ने अपने नीतियों के खंजरों से हमें छलनी कर दिया है। इस को झुठलाया नहीं जा सकता।

नाटककार यूनानी त्रासदी से अवश्य प्रेरित हुए हैं लेकिन यूनानी त्रासदी का अन्धानुकरण उन्हों ने नहीं किया है।[2] कोरस की प्रस्तुति तो यूनानी

1– 'मैं मानता हूँ कि यदि किसी ऐतिहासिक घटना, लोक दास्तान या कथा को लेकर उसे नाटकीय स्वरूप प्रदान किया जाये तो वह किसी महत्त्वपूर्ण युग का प्रतिबिम्ब होना चाहिये। इस से विषय और सम्प्रेषण सोद्देश्य दिखाई देते हैं। 'नगर उदास' एक ऐतिहासिक नाटक है लेकिन पाठक और दर्शक को स्वयमेव इस में अपना वर्तमान काल नज़र आये गा।' 'नगर उदास'–पृ०–5–6

2– 'मेरा नाटक किसी यूनानी त्रासदी का रूपान्तर नहीं....।' इस में समसामयिक युग की कथा और संकट दशा है...... इस की प्रस्तुति भी आधुनिक तरीके की होगी।' 'नगर उदास'–पृ०–5–प्राक्कथन

त्रासदी से प्रेरित होने का ही परिणाम है। पर यहाँ कोरस मात्र कथा को गति देने के उद्देश्य से अथवा मनोरंजन के उद्देश्य से नाटक में नहीं आया है। यह नर्तकों अथवा गायकों का, कथावाचकों अथवा उपदेशकों का छोटाग्रुप नहीं है। यह तो यथार्थबोध कराने वाली इतिहास की जीवित आत्माएँ हैं।[1] इनका विगत वर्तमान के साथ जुड़ा हुआ है। ये तो हमें हमारे आज के प्रति सचेत रहने की सलाह देकर जीवन के रंगमंच से दूर हट जाते हैं। तनिक सोचिये, 11वीं शताब्दी के हिन्दू राज काल में 95% से भी अधिक जन संख्या हिन्दू थी। केवल एक हज़ार वर्ष के बाद यह 05% के आस पास रह गई और विस्थापन के बाद यह 01% भी नहीं। अरे यह कैसा परिवर्तन हुआ? इतिहास ने यह कौन सी करवट ली। घर का मालिक आज बेघर हो कर बदनुमा टेन्टों में दम तोड़ रहा है, दमघुटा देने वाले रिश्वती एक कमरा नरक कुंड में वावेला कर रहा है, माइग्रेंट (विस्थापित) की लेबिल पाकर जानवर के समान जीवन जीने को विवश हो रहा है। 'नगर अदास' का कोरस इस कड़वे सत्य की उपेक्षा नहीं कर सकता। नाटक कार ने इसी लिये उस की दिशा ही बदल दी है।[2]

नाटक के प्रथम अंक में तीन ब्राह्मणों के हृदयोदगार वर्तमान कालीन कश्मीर की दुर्दशा का ही बोध कराते हैं। इन्हीं के वार्तालाप से प्रथम अंक आरम्भ होता है। रचनाकार अपने समकालीन जीवन से प्रभावित हो कर, 11वीं शताब्दी ई॰ के ऐतिहासिक सन्दर्भों पर कोरस द्वारा सांकेतिक टिप्पणियाँ दे कर, मूलतः वर्तमान काल के सत्य को ही अनावृत करते हैं :–

–'पहला ब्राह्मण – कौन कहे गा आज ज्येष्ठ महीने का दिन है। आकाश में सर्वज धुँधरि छाई हुई है।

द्वसरा ब्राह्मण – कौन कहे गा आज वितस्ता सुखद रूप में

1– 'इस नाटक का कोरस तनिक भिन्न है। इस का एक एक पात्र व्यक्तिगत रूप से तथा सामूहिक रूप से महत्त्वपूर्ण है। एक क्षण में पात्र तो दूसरे ही क्षण मानो सूत्रधार। एक क्षण में आलोचक तो दूसरे क्षण मानो परामर्शदाता। कश्मीरियों में बातों को बारबार बोलने, स्पष्टीकरण देने और समीक्षा करने की आदत बन गई है मानो कोई सामाजिक प्रथा है। होसकता है इस के ऐतिहासिक और भौगोलिक कारण हों। इस लिये कोरस बोलता है और बार बार बोलता है।' 'नगर उदास'–पृ॰–4–5, प्राक्कथन

2—'उसी प्रकार से कोरस परिस्थितियों एवं घटित होने वाली घटनाओं को या तो महसूस करता है, उनपर अपनी अपनी राय (मत) देता है नहीं तो उदास रह कर सब कुछ सहन करता है जो घट रहा है। यही गत, गत पचास वर्षों में कश्मीरी लोगों की हुई है। सामान्य जन, जिन में मैं भी एक हूँ–उदास, 'नगर उदास'। 'नगर उदास'–पृ॰–5

		प्रवाहित है। आज उस के अपने कूल पराये लगते हैं।
तीसरा ब्राह्मण	–	कौन कहे गा आज पृथ्वी शीतल है। पापी दुष्टात्माओं के बोझ से तो वह बोझिल है।
चौथा ब्राह्मण	–	कौन कहे गा कि आज कश्मीर भयमुक्त है। हर एक को अपना ही रूप पराया लगता है।
पहला ब्राह्मण	–	नगर में लोग मध्याह्न को ही बहिर्द्वार बन्द करके बैठते हैं।' 'नगर उदास'–पृ०–15–16

इस प्रकार नाटककार ने समसामयिक यथार्थ को इतिहास के प्रामाणिक सन्दर्भों के माध्यम से मुखर करने की चेष्टा की है। सूर्यचन्द्र जब अनन्त देव को महाराजा कलशदेव की भावी योजनाओं की सूचना देता है तो श्रेष्ठ ब्राह्मण दुखदमुद्रा में पुकार उठता है :–

> –'किस ने शाप दिया। यह पृथ्वी दिन प्रति दिन मानो क्षीणकाय हो कर सिकुड़ती जा रही है। कौन प्रजा को शाप मुक्त करे गा।'[1]

सन् 1990 ई० में कश्मीर से विस्थापन इतिहास में पहली बार नहीं हुआ है। बुतशिकन (सुलतान सिकन्दर 1389–1413 ई०) ने अपने राज्यकाल में अल्पसंख्यकों की जो दुर्दशा की, मुगल शासक औरंगज़ेब (1658–1707 ई०) के राज्यकाल में गवर्नर मुज़फ़्फ़र खाँ (1690–92) तथा अब्दुल नसर खाँ (1692–98) का अल्पसंख्यकों प्रति जो पशुवत् व्यवहार रहा तथा जबार खाँ अर्फ़ जबार जन्दुँ अन्तिम पठान गवर्नर (1819ई०) ने कश्मीर के अप्लसंख्यकों के धार्मिक विश्वासों का जो अनादर किया, उस पर तो स्वयं इतिहास भी लज्जित है। कई बार विवश हो कर शस्त्रहीन शान्तिप्रिय कश्मीरवासियों को देश छोड़ क़र पहाड़ों में शरण लेनी पड़ी है। यह आतंकी रबड़ का तम्बू सदियों से फैलता ही चला गया। अतंर केवल इतना है कि उस युग में यह शासकों द्वारा फैलाया हुआ आतंक था और इस युग में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कट्टरपंथी धार्मिक नेताओं द्वारा पोषित तथा स्वचालित बन्दूक की भयदायिनी शक्ति से सम्पन्न है। निर्दोष का ख़ून तब

1– 'नगर उदास'–पृ०–25

भी बह रहा था आज भी बह रहा है और जब तक देश में वोट की राजीति पनपती रहे गी तब तक ख़ून बहता रहे गा।

इस बात को ध्यान में रखना अत्यन्तावश्यक है कि क्यमू साहब स्वर्गीय जयशंकर प्रसद के समान नाटक पाठकों के लिये ही नहीं लिखते है। उन्हें हर समय रंगशाला, मंच, मंचन और दर्शक की तलाश रहती है। वे स्वयं घाटी के चर्चित थिएटर–विशेषज्ञ, रंगकर्मी और मंच प्रबन्धक कलाकार हैं। कश्मीरी लोक नाटक को एक नया जीवन दान देने में उन की ऐतिहासिक भूमिका रही है। 'बाँडनाट्यम' (प्रकाशन वर्ष 2001ई॰) इस का प्रमाण है। वे समकालीन मंच की बारीकियों से बख़ूबी परिचित हैं। तकनीकी आविष्कारों ने आज भारत में मंच को अत्यन्त रोचक और प्राणवान बना दिया है। यह दूसरी बात है कि फिल्म और टेलीविजन ने उस के प्राण–हरण में कोई कसर नहीं रख छोड़ी है।

'नगर–उदास' का मंचन बड़ी सफलता के साथ राजधानी दिल्ली में हुआ। कई दिनों तक बराबर मंचन होता रहा। 8 फरवरी 2001ई॰ से 12 फरवरी 2001ई॰ तक 'श्रीराम सेंटर फार परफार्मिंग आर्टस' 4 सफ़दर हाशिमी मार्ग, नई दिल्ली की मुख्य रंगशाला में 'नगर वोदॉस' नाटक बड़ी सफलता के साथ खेला गया। इस का हिन्दी अनुवाद श्री गौरी शंकर रैणा ने किया और निर्देशन चर्चित निर्देशक मुश्ताक़ काक ने किया। देश की प्रसिद्ध पत्रिकाओं 'दि हिन्दु' (शुक्रवार 16 फरवरी 2001) 'हिस्ट्री आन स्टेज' (इतिहास मंचपर) शीर्षक से नाटक का श्री रोमेश चन्द्र द्वारा लिखित पुनर्विवेचन (Review) छपा तथा 17 फरवरी 2001ई॰ को कविता नागपाल द्वारा 'नगर उदास' पर चार कॉलम का विस्तृत व्योरा 'हिन्दुस्तान टाइमस' में (Theatrically sound and humourous plays) शीर्षक से प्रकाशित हुआ। 2 मार्च 2002 ई॰ के दिन राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित होने वाली हिन्दी पत्रिका 'हिन्दुस्तान' में श्री श्याम नारायण प्रधान द्वारा 'राजतरंगिणी का राज रंग – नगर उदास' शीर्षक से इस नाटक के कथ्य और शिल्प पर सचित्र आलोचनात्मक प्रतिक्रिया प्रकाशिल हुई। नाटक के संवेद्य को रेखांकित करते हुए लेखक महोदय लिखते हैं –'यह नाटक मनुष्य के उन स्वभावगत गुण–दोषों को मंचित करने में सफल रहा, जिस से आज का नागरिक भी घिरा हुआ है। पृष्ठभूमि अवश्य बदल गई है, किन्तु मानसिक

धरातल आज भी वही है। इस नाटक में ब्राह्मणों का समूह संवाद विशेष प्रभाव उत्पन्न करता है। नाटक प्रेमियों के लिये इसे देखना एक सुखद अनुभव हो सकता है।'

'दैनिक दिन्दुस्तान', (एक मार्च 2001ई॰)

मंच की प्रत्येक आवश्यकता को ध्यान में रख कर देश काल की सीमाओं के भीतर नाटक कार ने इतिहास में वर्तमान को खोजने का प्रयास किया है। वेश–भूषा, आचार–विचार, सम्बोधन शैली, कोरस पद्धति, पारिषद ब्राहमणों की उपस्थिति तथा उन के संक्षिप्त संवाद जो नाटक की कथा को गति प्रदान करते हैं, गीत योजना, संवादों के मध्य नाटककार द्वारा लिखित कथा–विकास के संकेत–सूचक अथवा अभिनय हेतु निर्देश, देशकाल वातावरण योजना, पात्रों की मानसिक प्रतिक्रियाएँ तथा बाह्य मुद्राओं का चित्रण इस बात के प्रमाण है कि एक अनुभवी नाटककार मंच की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अपना लेखन कर्म निबाह रहे है। विचारणीय बात यह है कि नाटककार ने 'नगर उदास' नाटक में कश्मीर इतिहास के दो वर्षीय काल खण्ड (1079ई॰–1081ई॰) को 'राजतरंगिणी' के सातवें तरंग के आधार पर पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है।[1] स्पष्ट है कि वे कश्मीर इतिहास के विविध उलट फेरों से भली भाँति परिचित हैं। हिन्दू राज्य काल के इतिहास का प्रामाणिक स्रोत कल्हण पण्डित द्वारा लिखित 'राजतरंगिणी' है। सातवें तरंग के 220 श्लोकों में वर्णित कश्मीर इतिहास वस्तुतः इस नाटक का मूलाधार है लेकिन नाटककार केवल इतिहास को नहीं दोहराते हैं, वे इतिहास को वर्तमान सन्दर्भों के साथ जोड़कर पाठक और दर्शक को एक साथ विगत और वर्तमान की प्रतीति कराते हैं। उन का यह प्रयास प्रशंसनीय है। स्वंय उन्हीं के शब्दों में:–

'सन् 1989ई॰ में पहले आतंक तत्पश्चात् उग्रवाद आरम्भ हुआ। . ...कुछ विस्थापित कैम्पों में रहे कुछ किराये के मकानों में। विखंडित परिवार (Fragmented Families) पराये घरों में किरायेदार, खोने की जलन, बन्धु–बान्धव, पड़ोसी और रिश्तेदारों से बिछोह, नया माहौल, नई

1- 'Nagar Udas' has reconstructed a period of 2 years between 1079-1081 A.D based on 220 shlokas (verses) of the 7th chapter of Kalhana's original work. It is a dramatic documentation of a period that was most crucial for Kashmir, as it was then that foreign marauders came to Kashmir and with the help of some local kings and princes let loose a reign of terror.'

The Hindu - Friday February 16, 2001

"History on stage' - Romesh Chander

परिस्थियाँ। संक्षेप में दुख, व्यथा, वेदना,घाव और जुदाई के ग़म में भाँति–भाँति के अनुभव झेलते रहे अतः एक त्रासदानुभूति पिछले छः वर्षों (अब चौदाह वर्षों) से हमारे वक्ष को कुरेदती रही। परणिाम? एक हज़ार वर्ष प्राचीन कश्मीर इतिहास का एक दृश्य मेरी समकालीन अनुभूति के साथ मिल गया और नाटक ने जन्म लिया।

"नगर वोदॉस" प्राक्कथन–पृ०–06

इस में कोई सन्देह नहीं कि यह अलग थलग पड़जाने का एहसास बड़ा प्राणघातक होता है।[1]

'शीर्षक की सार्थकताः 'नगर वोदॉस'

सब उदास हैं, नगर उदास है हसलिये कि राजमहल तथा राजपरिवार षड़यंत्रों के केन्द्र हैं। बाप–बेटे में परस्पर दुश्मनी है और अविश्वास की भावना दोनों के भीतर काँटे की तरह चुभ रही है। अधर्मी राजा कलश देव अन्याय के पथ का अनुसरण करते हुए समस्त प्रजा को आतंकित कर रहा है। प्रजा जनों का जीना दूभर हो गया है। इधर नगर निष्कासित उनके माता–पिता जो विजयेश्वर के धर्मस्थान में शरण लिये बैठे हैं अपने कुकर्मी पुत्र के कुव्यवहार से क्षुब्ध यातनामय जीवन जीने को विवश है इस लिये सम्पूर्ण नगर के उदास होने का एक कारण है–निः शक्त शासन तंत्र तथा दूषित राज्य–व्यवस्था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अशान्ति व्याप्त है। चाहे आप सामाजिक क्षेत्र को देखें अथवा धार्मिक–सांस्कृतिक या राजनीतिक–आर्थिक क्षेत्र को देखें–सर्वत्र कुव्यवस्था परिणाम स्वरुप शान्ति भंग। नगर के उदास होने का यह दूसरा कारण है।

स्वयं तथाकथित प्रजारक्षक महाराजा के द्वारा ही प्रजा का शोषण हो रहा है। विजयेश्वर के विनाश के पीछे महाराजा कलश देव षड़यंत्रकारी दैत्य के समान प्रतिशोध की अग्नि में दग्ध विनाश लीला का प्रमुख किरदार (पात्र) बन जाता है। लोग भयग्रस्त निस्सहायावस्था में अपने आप

1– 'यह अलग थलग पड़ने का एहसास हृदय को विदीर्ण कर देता है। जो निष्कासित हो, जिसे देश निकाला मिला हो अथवा जो अपने वतन से दूर हो–उसे एसा महसूस होता है कि उसने अपना बालपन, यौवपन और सम्पूर्ण जीवन–प्राप्ति खो दी है। उस के ज़ेहन में भूतकाल आँखों के सामने दृश्यमान हो जाता है और हृदय खो देने की पीड़ा से विह्वलित हो उठता है।'

'नगर उदास'–प्राक्कथन–पृ०–10

को लाचार पाते हैं। नगर के उदास होने का यह तीसरा कारण है।

विदेशी राजकुमार (शाहकुल के राजकुमार) स्वदेशी राजाओं के आपसी फूट से लाभ उठा कर अपनी शक्ति केन्द्रित करने के लिये सक्रिय हो जाते हैं। लोभान्ध शासनाधिकारी इस चाल को समझ नही सकते। राजसता दिन प्रतिदिन निर्बल होती चली जाती है। नगर के उदास होने का यह चौथा कारण है।

सम्पूर्ण शासन व्यवस्था अशक्त और निर्बल दिखाई दे रही है। भीतरी षड़यंत्रों ने शासन व्यवस्था को जर्जरित कर दिया है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि राजा अनन्तदेव अपने राज्य–काल में हिन्दू राज्य–सता को सुदृढ़ बनाने के देतु कोई विशेष योगदान नहीं दे सके। रानी सूर्यमती आवश्यकता से अधिक शासकीय मामलों में हस्ताक्षेप कर रही थी। देश को विनाश के कगार पर ला खड़ा करने में सूर्यमती जाने आनजाने में प्रभावशाली भूमिका निबाहती है। इतिहास उसे कभी क्षमा नही कर सकता। नगर के उदास होने का यह पाँचवाँ कारण है।

राजा अनन्त देव की इच्छाओं पर जब पानी फिर जाता है तो वे होश में आकर अपनी राजनीतिक भूल के दुष्परिणामों को देख खिन्न हो उठते हैं। वह अपने पुत्र कलशदेव को नाम मात्र का महाराजा घोषित कर पर्दे के पीछे स्वंय सता सँभाले बैठा है। स्वाभाविक है कि यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रह सकती है। परिणाम स्वरुप विद्राह–सर्वत्र विद्राह। अतः नगर उदास रहने का छठा कारण है राजा अनन्त देव और उसकी स्वार्थमय दूषित नीतियाँ।

ऐतिहासिक परिवेश और आधुनिक सन्दर्भ

प्रस्तुत नाटक के एतिहासिक परिवेश और आधुनिक सन्दर्भ को समझने के हेतु निम्न लिखित बातों की सम्यक् जानकारी होना आवश्यक है :–

1. कश्मीर में हिन्दू राज्यकाल का इतिहास विशषेकर 11वीं शताब्दी ईसवीं में मूढ़ लोहर वंशी हिन्दू राजाओं का राज्यकाल।

2. समसामयिक कश्मीर, विस्थापन, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तलवार की नोक पर विशिष्ट मान्यताओं के प्रचार की योजना और धू धू कर दग्ध हुए कश्मीर का भूत, भविष्य और वर्तमान।

3. तत्सम् शब्दबहुल कश्मीरी भाषा और शब्दों की पहचान। हिन्दू संस्कृति से जुड़े शब्द, शब्द प्रयोग एवं उनके तद्भव रूपों की सम्यक् जानकारी। वस्तुतः नाटककार ने ग्यारहवीं शताब्दी में कश्मीर खण्ड में प्रचलित कश्मीरी भाषा के संस्कृत शब्दबहुल रूप को तद्भव प्रयोगों के साथ प्रस्तुत करने का अत्यंत सफल और नाटकीय प्रयोग किया है। नाटक के आधार पर ऐसे सैंकडों शब्दों की सूची प्रस्तुत की जा सकती है जो आज 21वीं शताब्दी के प्रारम्भिक युग में रहने वाले बहुसंख्यक समाज में अप्रचलित हैं क्योंकि वह सांस्कृतिक और धार्मिक पृष्ठभूमि ही शेष नहीं रही है फलतः उस से जुड़ी शब्दावली आज लोगों की समझ के बिल्कुल बाहर है। आज तो कश्मीरी पर फ़ारसी, अरबी, अंग्रज़ी तथा अन्य विदेशी भाषाओं के प्रभाव के साथ साथ उर्दू भाषा का भी ज़बरदस्त ग़लबः (प्रभुत्व) है। यह तो पिछले एक हज़ार वर्षों में घटित होने वाली ऐतिहासिक घटनाओं की स्वाभाविक परिणति है। इतिहास को नकारा नहीं जासकता।

एक हज़ार वर्ष पूर्व कश्मीरी भाषा का क्या रूप रहा होगा अथवा किस रूप में प्रचलित होने की सम्भावना रही होगी नाटक कार उसी भाषा रूप के सर्जन में प्रयत्नशील दिखाई देते हैं।

विषय हिन्दू राज्य काल और कश्मीरी भाषा का है। काल–विशेष के प्रभाव को गहराने के उद्देश्य से प्रेरित होकर नाटककार अद्भुत भाषा प्रयोगों से पाठक/दर्शक का मन मोह लेते हैं।

इस नाटक को महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय के स्तर पर पढ़ाने के हेतु इतिहास विद् रंगकर्मी के साथ साथ एक भाषा पण्डित अध्यापक की आवश्यकता होगी। तत्सम शब्दबहुल कश्मीरी भाषा की सम्यक् पहचान के बिना रचना के साथ न्याय नहीं हो सकता।

4. परस्पर शुत्रता एवं वैर भाव जब गहरे मूल पकड़ लेता है तो समझौता, सद्भावना यात्राँए, गँठजोड़, बातचीत और प्रेस–रिलीज़ सब व्यर्थ होते हैं, इन से कोई परिणाम नहीं निकलता। पीक भरे फोड़े को जब तक चीरा नहीं जाये गा तब तक पीड़ा का निवारण नहीं हो सकता। बहादुर जीवन में एक बार मरता है, बार बार नहीं। स्वर्गीय रामधारी सिंह दिनकर 'कुरुक्षेत्र' में लिखते हैं :–

—'छीनता हो स्वत्व कोई और तू
त्याग—तप से काम ले, यह पाप है,
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ हो।
बद्ध, विदलित और साधन हीन को
है उचित अवलम्ब अपनी आह का,
गिड़गिड़ा कर किन्तु, माँगे भीख क्यों
वह पुरुष जिस की भुजा में शक्तिहो।'

'कुरुक्षेत्र' — रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल—पटना—4, संस्करण — सम्वत् 2003, द्वितीयसर्ग — पृ०—25

(अथवा)

—'क्षमा शोभती उस भुंजग को
जिस के पास गरल हो
उस को क्या, जो दंतहीन,
विष रहित, विनीत, सरल हो?'

('कुरुक्षेत्र') — तृतीय सर्ग—पृ०—36

'नगर उदास' के द्वितीय अंक में एक ब्राह्मण इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए कहता है :—

—'जैसे जीर्णशीर्ण कपड़ा टाँके लगा लगा कर भी मज़बूत नहीं बनता वैसे ही शत्रुता जब एक बार उभर कर सामने आये तो मेल — मिलापों, गँठ जोडों या समझौतों के बावजूद भी बनी रहती है।'

'नगर उदास'—पृ०—44

5. उस युग में प्रचलित नारी शोषण तथा समकालीन आतंकी युग में नारी शोषण परस्पर एक द्वसरे से भिन्न नहीं, वही सब कुछ पिछले तेरह वर्षों से सामाजिक स्तर पर कश्मीर में हो रहा है जो उस युग में अन्यायी शासक कलशदेव के राजकाल में हो रहा था। एक ब्राह्मण इतिहास के सत्य को दोहराते हुए कहता है —

—'कहते है कि युवा सुन्दर लड़कियों को माँ — बाप के घर से हठात् (बलात्) उठाया जाता है और उनकी मर्यादा भंग की जाती है।'

'नगर उदास'—पृ०—45

6. आज रिश्वत रानी सर्वत्र पूजी जाती है। शासन तंत्र में तो उस के वारे–न्यारे हैं। आप कहीं भी कोई भी काम घूस दे कर आसानी से करा सकते हैं। घूस देना और घूस लेना तो अब समय की पहचान है, एक सामाजिक की व्यवहार कुशलता है। ऊपरी आमदनी पर ही रिश्ते जोड़े जाते हैं अथवा तय होते है। कफ़न चोर तो मृतजीव को भी नहीं छोड़ते। तिजोरियाँ भरी पड़ी है देश और विदेशों में–शराफ़त के नाम पर धन्धा करने वालों की। जाने कितनी सुखराम अथवा सिद्धू हमें यहाँ मिलें गे। यही तो आज कल की व्यवहार कुशलता है। समाज की रगों में व्याप्त इन दूषित रक्त कीटाणुओं ने पूरी व्यवस्था को ही शक्तिहीन बना दिया है। 21वीं शताब्दी के दुर्दशाग्रस्त जन जीवन का यथार्थ बोध कराते हुए नाटक कार वस्तुतः आधुनिक युग की दूषित अर्थ व्यवस्था पर चोट करते हैं। एक ब्राह्मण के इस कथन में कितनी सच्चाई है कि:–

–'घूस दिये और लिये बिना कोई काम नहीं हो रहा है।'

'नगर उदास'–पृ०–46

7. 11वीं शताब्दी में कश्मीर में अन्य धर्मावलम्बियों का प्रवेश हो चुका था। नाटककार ने उन्हें शाहकुल के राज कुमार कह कर शासन व्यवस्था में उन के प्रवेश की सूचना दी है। परस्पर संघर्ष भी छिड़ चुका था। उस विकट स्थिति पर प्रकाश डालते हुए राजा अनन्तदेव सूर्यमती से कहता है :–

–'पर धर्मी बादशाहों ने सत्ता ग्रहण की। एक के
बाद एक देश को वे अपने अधीन कर रहे हैं।
ये (हमारी) धर्म पुस्तकों को जला देते हैं तथा
मूर्तियों को चकनाचूर करते हैं। मन्दिरों का नाश
कर रहे हैं।'

'नगर उदास'–पृ०–57

उसी की पुनरावृत्ति से 20वीं शताब्दी के आन्तिम काल खण्ड में कश्मीर एक बार फिर कराह उठा और लाखों की संख्या में अल्पसंख्यक देश छोड़ कर जलावतन होने पर मजबूर हुए।

8. आज तेरह वर्षों से विस्थापन की दुर्दशा सहते जीवन मूल्यों, मान्यताओं और विश्वासों में बदलाव आ गया है, ऐसा होना स्वाभाविक है। अब किस पर विश्वास किया जाये और किस पर नहीं। विपरीत परिस्थितियों में यह पता नहीं रहता कि कहाँ, कब और क्या होने वाला है। दया धर्म तो

अर्थहीन शब्द को गये हैं। बड़ों को झुकने के लिये या ख़ामोश रहने के लिये छोटे विवश करते हैं। कलाश्नकोप में तो यही शक्ति है। अब किस को किस का भय और ख़ौफ़! सब आतंकी साम्राज्य में आतंकित होने के साथ साथ बदमस्त भी हैं और मदमस्त भी हैं। नाटक के तृतीयअंक में ब्राह्मण एक साथ विजयेश्वर स्वामी के सम्मुख अश्रुसिक्त नेत्रों से पुकार उठते हैं :–

> –'बुज़ुर्गों ने बुज़ुर्गी खोदी और नवजवानों ने लिहाज़ (शील)। दया धर्म की इति हुई है। विजयेश्वर स्वामी! यह कौन सा विपरीत समय आन पड़ा है। किसी को किसी का भय अथवा ख़ौफ़ नही; विश्वास और सत्य अर्थहीन हो गये।'
>
> 'नगर उदास'–पृ०–91

राजा अनन्तदेव तो स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि :–

> –'प्रजा को आतंकित करने के हेतु ताकि कुकर्मों के विरूद्ध कोई आवाज़ न उठा सके, इन्हों ने परधर्मी दुष्टजनों से अग्नि–स्वाहा करने और सर कुचलने की विधायें सीख लीं।'
>
> 'नगर उदास'–पृ०–96

आग और विनाश

आग और विनाश का परस्पर चोली दामन का साथ है। सन् 1990ई० में जब लाखों अल्पसंख्यक अपना घर द्वार छोड़ कर कश्मीर से चले गये और देश के अन्य क्षेत्रों में शरणार्थियों के रूप में रहने को विवश हुए तो उन की दशा भी उन विजयेश्वर वासियों के समान ही थी जिन के घर द्वार को शड़यंत्रकारी महाराज कलशदेव द्वारा पोषित आतंकियों ने जलाकर राख कर दिया थ। एक ब्राह्मण के शब्दों से वस्तुस्थिति का सम्यक् बोध हो जाता है:–

> –'बर्तनों के खाँचे और कपड़ों के गट्ठे, ओढ़ने, बिछोने के कपड़े तथा बाल बच्चे लेकर हर एक परिवार का मुखिया (मानो किसी ने उसे घसीट लिया हो) जगह की तलाश में भटक रहा है ताकि वर्षा, हिमपात, शीत हवा की लहरों और आन्धियों से अपने प्राण बचा सके।'
>
> 'नगर उदास'–पृ०–116

सन् 1990 ई० में विस्थापन के तुरन्त बाद घरों को लूटना शुरू हो गया और देखते ही देखते आबाद घर नष्ट हो कर अस्थि कंकाल बन गये। तत्पश्चात् भीषण आग जो कई निवास स्थानों में कई दिनों तक लगातार जलता रहा, बस्तियाँ उजड़ गई, मुहल्ले सुनसान पड़ गये। कई घरों को आतंकियों ने अपने छिपने के अड्डों के रूप में प्रयोग में लाया और मकानों को दानवी लीलओं के हेतु सुरक्षित स्वर्ग स्थलों (safe heavens) के रूप में चुना गया। आग, आग और आग, बस आग के हाहाकार से दिशायें कांप उठती थी। एक ब्राह्मण के शब्दों में :–

> –'धर्म पुस्तकें, शास्त्र तथा चित्र पोथियों के अम्बार
> जाने कितने घरों में जलकर राख हो गये। भोजपत्रों
> को जलने में कितना समय लगता है। बस, कुछ क्षणों
> में ही जल कर राख हो गये।' 'नगर उदास'–पृ०–116

इस आतंक के दौर में आग को हथियार के रूप में इस्तेमाल में लाया जाता है। हज़ारों घर, दुकानें, पूजास्थल, बाज़ार, ख़ानक़ाहें, स्कूल, सरकारी दफ़्तर, पुल, डाकख़ाने, बैंक, पुस्तकालय आदि आग की चपेट में आकर भस्म हो गये। जन सामान्य को आंतकित करने के लिये यह एक प्रभाव शाली कार्रवाई (कार्यवाही) है। स्वयं नाटककार के शब्दों में 'आग अत्याचार का हथियार है विशेष कर कश्मीर में जहाँ मकान, पुल, नाव, भवन एवं धर्मस्थान लकड़ी के बने होते हैं ....। जो आग से जल गये उन्हें खो जाने का मनस्ताप एवं बिना घर के जीने की पीड़ा। (दोनों एक साथ तड़पा रहे हैं।)

'नगर उदास'–प्राक्कथन– पृ०–8

नाटक में तृतीय अंक की समाप्ति पर विजयेश्वर का भीषण अग्निकांड इंसानी वजूद को ही कँपा देता है। नाटककार लिखते हैं कि विजयेश्वर के आग की दहन चतुर्थ अंक में महसूस होने लगी जिस को उन्हों ने मई 1995 ई० में लिख कर समाप्त किया। 11 मई सन् 1995ई० में ही मस्तगुल के हाथों हमारी सांस्कृतिक विरासत का उज्ज्वलतम प्रतीक च्रारशरीफ़ भीषण आग्नि कांड में जलकर राख हो गया।

नाटक कार अत्यन्त खिन्नावस्था में नाटकीय व्यंग्य के साथ इतिहास के तथ्य को दोहराते हुए नाटक के प्राक्कथन में लिखते हैं :–

—'आतंक के आरम्भ होने के पश्चात् तथा कश्मीरी पण्डितों के पलायन के बाद पण्डितों के घरों, स्कूलों, पुलों और दरगाहों को आग लगाने का जज़्बः कम नहीं हुआ। सभ्यता और ज्ञान के मूल—स्त्रोतों को अग्नि ध्वस्त करने का परिणाम क्या हो सकता है?' प्रतिशोध लेने का जज़्बः क्या सचमुच आग लगाने से या ख़ून बहाने से शान्त होता है ?'

'नगर उदास'—प्राक्कथन—पृ०—7

देखा जाये कलशदेव और मस्तगुल की सोच एक ही है। दोनों प्रतिशोध की अग्नि में दग्ध हो चुके हैं। कलशदेव अपने ही माता—पिता के ख़ून का प्यासा था और मस्तगुल धर्म—ध्वज हाथ में थामे विशिष्ट धार्मिक विश्वासों पर ही कुल्हाड़ा मार कर चला गया।

11वीं शती ईसवी में सत्ता हथियाने के लिये शासनाधिकारी अपने ही प्रजाजनों को आग के शोलों में झुलसा देते हैं और 20वीं शताब्दी ईसवी के अतं में आतंकी पापाचार की इस भीषण लीला को दोहरा कर मानव इतिहास को ही कलंकित कर रहा है।

हज़ार वर्ष पहले और हज़ार वर्ष के बाद मनुष्य—प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं आया है यद्यपि आज हम ने पृथ्वी, आकाश और पाताल के गर्भ को चीर कर अनेकों रहस्योदघाटन किये हैं लेकिन नृशंस दानव तब भी हमारी रंगो में छिपाथा, आज भी छिपा है और भविष्य में भी हमारे रक्त प्रवाह को दूषित करता रहेगा।

<u>संघर्ष : प्रेरणात्मक सन्देश</u>

अपने वक्ष में जलन की यही पीड़ा —'त्यो'ल' लिये विस्थापित समाज जम्मू, दिल्ली तथा कई अन्य शहरों में पहुँच गया। वर्षों वे तड़पते रहे और आज भी बराबर तड़प रहे हैं। मातृभूमि का बिछोह किसी निकटस्थ परिजन के बिछोह से कम नहीं होता, लेकिन केवल मातमी मुद्रा में पड़े रहना ही पर्याप्त नहीं होगा। जीने के हेतु संघर्ष रत रहना भी नितान्तावश्यक है। नाटककार इसी प्रेरणात्मक सन्देश को नाटक के चतुर्थ आंक में शीर्षस्थ ब्राह्मण के कथन द्वारा इस प्रकार व्यक्त करते हैं :—

—'हृदय में खो जाने की विह्वलता, होंठों पर बददुआ, प्रत्येक श्वास में आह भरी दुर्भावना, न आशीष न सुखद गृह की कामना। अरे विजयेश्वर वासियो ! उठो, कब तक तुम

घर द्वार लुटने का मातम करते रहो गे?

नगर उदास'–पृ०–117

पुनः जीवन जीने के हेतु संघर्ष करना होगा। जीवन के प्रति इस स्वस्थ दृष्टिकोण को लेकर अनुभवी नाटककार वस्तुतः जीवन जीने में अपना विश्वास व्यक्त करते हैं। नकारात्मक दृष्टि नहीं, स्वीकारात्मक जीवन दृष्टि ही छिन्न विच्छिन्न समाज को पुनः शक्ति सम्पन्न बना सकती है। समय बड़ा बलवान होता है और समय की चाल सदा एक जैसी नहीं रहती। हर बीता हुआ क्षण इतिहास की अविच्छिन्न श्रृंखला में जुड़ जाता है। वर्तमान को स्वीकारना और विकटतम परिस्थितियों से जूझना ही तो जीवन है। जिस के विषय में हम ने सपने में भी नहीं सोचा था वही यथार्थ आज विकराल दानव के रूप में मुहँ खोले निगलने के हेतु हमें घूर रहा है। गंगाधर के इस कथन में हमारे समसामयिक जीवन का याथार्थ ही तो प्रतिबिम्बित हो रहा है

–'यह भाग्य का चक्र है, वही राजा जो रंगीन स्वर्ण चोकियों पर बैठ कर चान्दी की थाली में अन्न ग्रहण करते थे आज तृण–कांड पर बैठ कर मिट्टी फैला कर मिट्टी के पात्र (टाकू) में अन्न खा रहे हैं।'

'नगर उदास'–पृ०–119

पारिवारिक विघटन

विस्थापन के परिणाम स्वरूप हमारा पारिवारिक जीवन सब से अधिक संकट ग्रस्त हुआ। एक एक परिवार कई छोटी इकाइयों में बँट गया और देश के विविध प्रदेशों और शहरों में बिखर गया। पारिवारिक विघटन ने हमारे सामाजिक ढाँचे (बनावट) को ही असंतुलित कर दिया। परिवार बँट गये, घर बँट गये, पिता–पुत्र परस्पर बँट गये। भाई, भाई से अलग हुआ यहाँ तक कि पति–पत्नी भी एक दूसरे से अलग हुए। विघटन की पीड़ा ने पारिवारिक जीवन में विष घोल दिया। बुज़ुर्गों की स्थिति दयनीय हो गई। युवा पीढ़ी अस्तित्व की तलाश में शहर–शहर भटकती रही और वृद्ध परिवारजन किराये के कमरों में उपेक्षित रह गये। इस विघटन के कई कारण हैं जिन पर विचार करना मेरा ध्येय नहीं है लेकिन इस बात को स्पष्ट करना आवश्यक है कि 'नगर उदास' नाटक में भी यही पारिवारिक

विघटन पात्रों की मानसिक शान्ति को भंग कर देता है। सम्मिलित कुटुम्भ का शीराजः(क्रम, तर्तीब) ही बिखर गया। ग्रामवासी विस्थापित परिवारों के लिये यह एक असहनीय स्थिति थी। कई बुज़ुर्ग इस विघटन को सहन नहीं कर सके। उन्हों ने प्राण दिये क्योंकि पारिवारिक टूटन को वे सहन नहीं कर सके। टूटन की यही असहनीय पीड़ा 'नगर वो'दॉस' नाटक में करूणा का रस घोलदेती है। शिवमन्दिर की धर्मशाला में रह कर राजा अनन्त देव और सूर्यमती वस्तुतः इसी क्षोभ के शिकार हैं।[1]

पलायन

कभी कभी शंकालुमन हम से यह प्रश्न पूछ ही लेता है कि समाज एक विशेष वस्तु स्थिति से दूर भाग कर पलायन क्यों करता है। मेरा विचार है कि हसास (स्वभिमानी, सवेदनशील) मानव आत्मसम्मान की रक्षा के हेतु वनवन भटकना स्वीकार कर लेता है, निर्लज्ज होकर अथवा श्वान-बुद्धि से प्रेरित होकर मालिक के तलवे चाटने से मर जाना अचित समझता है। सन् 1990 ई॰ में यही स्थिति अल्पसंख्यक कश्मीर वासियों के सम्मुख उपस्थित हुई और उन्होंने सुरम्य वातावरण में व्यतीत हो रहे आनन्दमय जीवन के सुखभोग को नकार कर आत्मसम्मान की रक्षा के लिये अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया।

राजा अनन्तदेव खिन्न हो कर रानी सूर्यमती को समझाते हैं कि अभिमानी मनुष्य आत्मसम्मान की रक्षा के हेतु कुछ भी कर सकता है। चुपचाप ज़हर भी निगल सकता है। यदि शक्ति नहीं है पलायन का अधिकार तो है तब मुहूर्त, शुभ मुहूर्त अथवा अशुभ महूर्त सब बेमानी हो जाते हैं। इसी लिये राजा अनन्तदेव अपनी पत्नी से कहता है कि :-

—'जब प्राण और आत्म सम्मान की रक्षा के हेतु घर छोड़ कर भागना पड़ता है उस समय मनुष्य नक्षत्र और मुहर्त नहीं देखता। अपने बन्धु बान्धवों तथा पास पड़ोस वालों से पूछे बिना वह पलायन करता है।

1– 'इस शताब्दी (20वीं) में कश्मीर में धीरे धीरे परिवार विघटन का युग आरम्भ हुआ। एक सम्मिलित परिवार टुकडों में बँट गया। एक बड़े घर की एक एक इकाई उस से अलग हुई। बाप से बेटा और भाई से भाई ..... जिन्हों ने अपने सम्मिलित कुटुम्ब को टुकड़ों में बटते देखा उन के लिये वह पर्याप्त दुखद था और जो एक दूसरे से अलग हुए उन्हें नवयुग की इस माँग (अनुरोध) को पूरा करना था। इस नाटक में इस विघटन की पीड़ा उभर कर सामने आती हो तो कोई अनहोनी न होगी।'

'नगर उदास'—प्राक्कथन—पृ०—9—10

शर्मदार गल जाते हैं, आत्माभिमानी भाग जाते हैं। आँखे नीचे किये वह अन्दर ही अन्दर गल जाता है। सब कुछ सह लेता है और भाग जाता है। जीर्ण ऊनी चादर, तवा, बरतन एवं फटे वस्त्र (निर्वाह हेतु आवश्यक वस्तुएँ) लिये जंगल जंगल भटकता है।'

'नगर उदास'–पृ०–124–125

<u>अतिथि : शाह कुल के राजकुमार</u>

कलशदेव के बुद्धिनाश में शाहकुल के राज कुमारों[1] महाराजा के तथा कथित सहायकों और मित्रों का बड़ा योगदान रहा है। राज–आज्ञा पत्र (चतुर्थभाग) पढ़ कर रानी सूर्यमती आवेश में आकर भीतरी आक्रोश को व्यक्त करते हुए कहती है :–

–'कह दो उसे अपनी बुद्धि से काम ले। वह उन पार के विदेशी षड़यंत्रकारियों के कहने में क्यों आता है। उन्हेंने अपने देश, राज और वंश को विपदाग्रस्त कर लिया अब उसे उकसाते हैं।'

'नगर उदास'–पृ०–141

यही तो समसामयिक युग में कश्मीर का यथार्थ है। मेहमान कहाँ कहाँ से यहाँ पहुँच आतिथ्य का आनन्द नहीं लेते हैं। जहाद के नाम पर नन्हें नन्हें बच्चोंको मौत की नींद सुलाना, महिलाओं और वृद्धजनों को गोलियों से भूनना, निर्दोष और निहत्थे अन्य धर्म अवलम्बियों को प्रतिशोध की धधकती अग्नि में झोकँ देना तो अब सामान्य घटनाएँ बन गई है। गाँव गाँव घूम घूम कर जयानन्द हृष्टपुष्ट जनों को इकट्ठा कर लेता है। उन के परिवार जनों को बन्दी बनाकर क़ैद खाने में डाल दिया जाता है और उन्हें घने जंगलों में ले जाकर विजयेश्वर को नष्ट करने की योजना समझाई जाती है तथा इस हेतु प्रशिक्षित भी किया जाता है। राज कुमार हर्षदेव नाटक के चतुर्थ अंक में इस रहस्य के ऊपर से पर्दा उठा लेते हैं।

समसामयिक युग के सन्दर्भ में देखा जाये यही तो पिछले तेरह वर्षों से कश्मीर में होरहा है। चुन चुन कर युवाजन छल–बल से अथवा लोभ देकर

1– (महम्द गज़नवी के लगातार आक्रमणों के कारण) कन्धहार और काबुल के शाह अपने ताजोतख़्त से वंचित हो जाते हैं। वे पंजाब और कश्मीर में प्रवेश करते हैं। कुछ समय तक पुनः सत्ता प्राप्ति के हेतु प्रयास करते हैं पर असफल रहते हैं। छिपने के लिये कश्मीर पहुँचते हैं। ये लोग यहाँ की राजनीति में भाग लेना शुरु करते हैं। राज व्यवस्था में प्रवेश करते हैं। षड़यंत्र रचते हैं। वे 'नगर उदास' नाटक में 'शाहकुल के राजकुमार' कहलाते हैं। 'नगर उदास'–प्राक्कथन–पृ०–11

इकट्ठे किये जाते हैं, सीमा पर पहुँचा कर उन में धर्मिक उन्माद जगाया जाता है, साथही विद्रोह के लिये शस्त्र प्रशिक्षण भी दिया जाता है परिणामस्वरूप आज विजयेश्वर (कश्मीर) में सर्वत्र विनाश की अग्नि धू धू कर जल रही है। इतिहास और वर्तमान में अद्भुत साम्य देखने को मिलता है।

राजा अनन्त देव का अतं

राजा अनन्तदेव का अतं कुछ कुछ असम्भावित और आश्चर्य चकित कर देने वाला लगता है। आत्महत्या तो आत्मविश्वास के टूट जाने का परिणाम है। राजा अनन्तदेव आवेश में आकर अथवा क्रोधाभिभूतावस्था में राजधर्म की अवहेलना करते हुए जीवन लीला समाप्त कर के वस्तुतः अपनी निजी कमज़ोरियों को ही उजागर करता है। शायद अन्त तक आते आते वह टूट जाता है और भीतरी टूटन ही सहन शक्ति के बान्ध तोड़ देती है और भावावेश विनाश का कारण बन जाता है।

तत्कालीन राज परिवार षड़यंत्रों के केन्द्र बन चुके थे। सन् 2001ई॰ में नेपाल राज्य में शाही हत्याओं ने तो समस्त नेपाल वासियों पर कालिख पोत दी। यह केवल 11वीं शताब्दी में ही नहीं हुआ है, रुग्ण तानाशाही में अथवा 'राजा–रानी' शासन व्यवस्था में तो राज महलों के षड़यंत्रों ने देश और देशवासियों का सब से अधिक अहित किया ह। मुग़ल राज में तथाकथित प्रजारक्षक महाराजा अकबर ने अपने ही पुत्र सलीम की इच्छाओं को कुचलने के लिये क्या नहीं किया।

राजा अनन्तदेव स्वयं अपनी कमज़ोरियों का शिकार हुआ है तथा राजनीतिक अपरिपक्वता अथवा नासमझी के कारण सदा प्रताड़ित रहा है। कलशदेव की राजनीतिक सूझबूझ एवं समय पर निर्राय लेने की शक्ति अर्थात् व्यवहार कुशलता उन्हें प्रशासन को चुस्त करने में सहायक सिद्ध होती है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि हम सत् युग में नहीं अपितु कलियुग में रह रहे हैं और इस युग में राजनीति के क्षेत्र में वही जीवित रह सकते हैं जिन में जीवित रहने का अदम्य उत्साह एवं निर्राय लेने की अटूट शक्ति निहित हो। आज राजनीति में सब कुछ जाइज़ (उचित, न्यायसंगत) है। समय और युगानुकूल अपनी नीतियों को बदलने में अक्षम्य अनन्त देव योग्यतम अवशेष (survival of the fittest) के सिद्धान्तानुसार भी जीने का

अधिकारी नहीं था। मन्दिरों में शरण लेकर गुप्तादेश सुनाने से काम नहीं बनता। आत्मिक शान्ति के लिये अथवा अध्यात्म साधना के लिये विजयेश्वर स्वामी की पूजाअर्चना उचित है पर ज़िन्दगी के ठोस यथार्थ का सामना करने के लिये शाही शान ही नहीं, शाही सामर्थ्य भी चाहिये। जो आग से खेलते हैं भाग्य–सुन्दरी उन्हें गले में विजय माला पहनाती है। समसामयिक युग के लिये घटना में निहित सन्देश बिल्कुल स्पष्ट है।

संकल्प सती होने का

रानी सूर्यमती सती होने का निर्राय लेती है। सती होना नारी–जीवन का क्रूरतम अभिशाप है। काश! उस युग में भी कोई लक्ष्मीबाई जीवित होती। सूर्यमती का निर्राय महत्त्वहीन है क्योंकि यह सक्रिय जीवन से पलायन का प्रतीक है। काश! वह अपने शेष जीवन को विजयेश्वर वासियों की सेवा में समर्पित कर देती, जीवन वन्दनीय बन जाता। अपने ही पुत्र द्वारा अपमानित, तिरस्कृत, निष्कासित, क्षुब्ध, पराजित, व्याकुल पति को प्रताड़ित कर वह उसे आत्महत्या के लिये अत्तेजित करती है और जब दुर्घटना घट जाती है तो उसे पातिव्रत की याद सताती है। यदि उस ने आजीवन अपने त्रिया हठ से शासकीय मामलों में हस्ताक्षेप न किया होता तो आज अनन्तदेव का इस प्रकार दुखद अतं न होता। रानियों के क्या कहने। अरे कैकेयी ने प्रिया बन कर दशरथ के प्राण हर लिये। रानी जब महारानी बन जाती है तो आकाश कुसुम चुनने बैठती है और रानी जब पटरानी बन जाती है तो दिवास्वप्न देखने लगती है। निगाहों से बाण चलाती है और अदाओं से घायल कर देती है।

पात्र–योजना

नाटक के पात्रों में राजा अनन्तदेव, रानी सूर्यमती, महाराजा कलशदेव और राजकुमार हर्षदेव एक ही राजवंश की तीन पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। राजा अनन्तदेव का पुत्र कलशदेव और कलशदेव का पुत्र राजकुमार हर्षदेव। नाटक की सम्पूर्ण कथा इन्हीं तीन पात्रों के इर्द गिर्द घूमती नज़र आती है। दैवी गुण सम्पन्न राजा अनन्तदेव जन सेवा और लोक मंगल की भावना से प्रेरित सर्वहित के हेतु सदा प्रयत्नशील रहता है और दुष्ट कलशदेव विनाशलीला में रुचि रखता है। दोनों राजपरिवार से सम्बन्धित हैं लेकिन दोनों का दृष्टिकोण परस्पर एक दूसरे से भिन्न है। बिल्कुल

अलग। अनन्तदेव आदर्शप्रिय, सत्यनिष्ठ कर्मयोगी है तथा उन का पुत्र कलशदेव कलुषित हृदय लिये केवल अपनी क्रूर प्रकृति का ही प्रदर्शन करता रहता है। श्रेष्ठ (शीर्षस्थ) ब्राह्मण क्षीरभूप से कहते हैं :–

–'यह समय का क्रूर और कड़ुआ अनुभव है। एक त्याग, क्षमा और दान करता है दूसरा लोक विनाश में सहयोग देकर विनाशक बन जाता है।'

'उदास नगर'–पृ०–130

यदि हम स्वतंत्र भारत की ओर देखें, राजवंशों की शासन प्रणाली तो समाप्त हुई पर नेतावंशों की शासन प्रणाली पिछले 55 वर्षों से ख़ूब फल फूल रही है। नेहरूवंश, अब्दुलाह वंश, गान्धी वंश, लाल वंश, सिंह वंश इत्यादि ईशकृपा का ही प्रसाद है।

अब तो स्थिति यह है कि किसी राजनेता का अकस्मात् देहान्त हो जाये तो परिवार से ही उत्तराधिकारी गद्दी सम्भालने के लिये लोक मंच पर खड़ा हो जाता है – देश सेवा का झंडा थामे। इस प्रकार यह वंश परम्परा की प्रथा तब भी फलफूल रही थी और आज भी ईश कृपा से दिन दूनी और रात चौगुनी तरक्की पा रही है। आगे चल कर हम देखते हैं कि ईशकृपा भी उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं रहती जितनी शक्ति केन्द्र की दया दृष्टि।

नाटकीय तत्त्वों के आधार पर यदि देखा जाये तो महाराजा कलशदेव नाटक का सब से सशक्त, व्यवहार कुशल, सक्रिय, राजनीति एवं कूटनीति में माहिर शासक है। बस समझिये कि वह राज करना जानता है और उस पथ पर किसी रुकावट अथवा व्यवधान को एक क्षण के लिये भी सहन नहीं करता। वह अपने ही पिता का घोर विरोधी है, उसे पिता–श्री की न्यायबुद्धि पर विश्वास नहीं अतः वह किसी भी तरह छल से या बल से उन्हें अपने पथ से हटाना चाहता है। देखा जाये तो राजा अनन्तदेव अपने पुत्र को शासन सौंप कर एक राजनीतिक भूल करते हैं जिस का पछतावा उन्हें अन्त समय तक रहता है। उसी पछतावे में वे आत्महत्या कर देते हैं। बेटे को राज सौंप कर वह अभिभावक के रूप में सक्रिय रहना चाहता हे पर बेटे को तथा उस के चापलूस सहयोगियों को यह स्वीकार नहीं है परिणामस्वरूप परस्पर रिश्तों में दरार पड़ जाती है और राजमहल षड़यंत्रों का केन्द्र बन जाता है।

कलशदेव महाराजा होने के साथ साथ एक सफल कूटनीतिज्ञ भी है वह माता पिता को विजयश्वर से वापस नगर लौट आने के लिये रोता

बिलखता विनती करता नज़र आता है। अपने किये पर पछताते हुए शोक व्यक्त करता है और अपने भावी आज्ञाकारीआचरण का विश्वास दिलाते हुए माता–पिता से घर लौट चलने की प्रार्थना करता है। पारिषद ब्राह्मणों से सादर निवेदन करते हुए कहता है:–

–'जो आप कहें गे वही करूँ गा। लेकिन मेरे सीधे साधे पिता, देवतास्वरूप पिता को आप घर लौट चलने के लिये तैयार कीजिये। वे राजधानी और राजभवन में पुनः लौट आयें।'

'नगर उदास–पृ०–73

देखिये कितना बड़ा कूटनीतिक खिलाड़ी और नाटककार है कलश देव। वास्तव में वह अपने माता पिता को किसी तरह महल में वापस लाकर आजीवन बन्दी बना कर कारागृह में डाल देना चाहता है ताकि निष्कंटक होकर राजानन्द का सुख पाप्त करें। राजनीति में सब कुछ जाइज़ है–छल–बल, झूठ–सच, पाप–पुण्य, हत्या–हिंसा–समस्त उपलब्ध साधनों में से समय और परिस्थिति अनुसार विशेष साधन का प्रयोग करना ही नीति–कुशलता है। थकन कलशदेव की स्वार्थान्ध व्यवहार कुशलता पर चोट करते हुए कोरस से कहता है :–

–'केवल ब्राह्मणों का प्रायोपवास तोड़ने के लिये राजा कलशदेव अपने माता–पिता को राजधानी वापस लाते हैं। वह एक धोखा था, प्रयोजन था – ब्राह्मणों का मान रखना तथा माता–पिता को मरणान्त तक जेल खाने में डाल देना ताकि अपनी इच्छानुसार निष्कंटक राज करें।'

'नगर उदास'–पृ०–90

राजनीति में कोई अपना नहीं, कोई पराया नहीं जो स्वार्थ सिद्धि में सहायक है वही मित्र है और जो बाधा डालदेता है वह शुत्र चाहे वह राजा अनन्तदेव ही क्यों न हों।

<u>कोरस</u>

नाटक में ब्राह्मणों का कोरस यूनानी नाटकों के कोरस के तर्ज़ पर प्रयोग में लाया गया है। कई ब्राह्मण इकट्ठे हो कर एक एक करके संवाद बोलते हैं और नाटक की कथा को गति प्रदान करते हैं। कथावस्तु अथवा पात्रों से जुड़ी आवश्यक सूचनाएँ भी कोरस के द्वारा दी जाती हैं। इन में एक ब्राह्मण नेता अथवा शीर्षस्थ ब्राह्मण की भूमिका निबाहता है, शेष एक एक

कर के अपने कथोपकथनों से वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालते हुए भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का पूर्व संकेत अथवा पूर्व सूचना भी देते हैं। प्रायः यह ब्राह्मण विवेकशील होने के साथसाथ सामयिक षड़यंत्र प्रधान राजनीति से भी भली भाँती परिचित हैं। इन का जीवन अनुभव इन की आयु के अनुसार विविधमुखी है। ये राजा अनन्तदेव के शुभ चिन्तक होने के साथ साथ राष्ट्रहितैषी और कलशदेव की नीतियों के घोर विरोधी भी हैं। सम्पूर्ण नाटक में इन की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।[1] वस्तुतः नाटक को चरमसीमा तक पहुँचाने में कोरस का योगदान विचारणीय है। इन के कथोपकथनों से पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर भी प्रकाश पडता है। समसामयिक समस्याओं के मूल कारणों को रेखांकित करते हुए कोरस कई ऐतिहासिक सन्दर्भों, घटनाओं, कार्यकलापों एवं प्रपंचों की जानकारी भी देता है। ये ब्राह्मण अलग अलग भी बोलते हैं और कभी इकट्ठे बोलकर नाटकीय प्रभाव को गहराने का प्रयास भी करते हैं।

इस के अतिरिक्त नाटक में बारह पारिषद् ब्राह्मण भी यदाकदा मंच पर उपस्थित होकर देशप्रम की भावना से ओत प्रोत विचारों को वाणी प्रदान करते हैं। इन का नेतृत्व भी एक शीर्षस्थ ब्राह्मण के द्वारा होता है।

कथा वस्तु : कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दे

नाटक के ऐतिहासिक कथावस्तु से सम्बन्धित प्रमुख महत्त्वपूर्ण मुद्दों को प्रकाश में लाना नितान्तावश्यक है अन्यथा अध्ययन अपने आप में अपूर्ण माना जाये गा। कथा–वस्तु पर विस्तारपूर्वक अथवा संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालना सम्भव नहीं है। केवल निम्नलिखित अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुद्दों की ओर पाठक/दर्शक का ध्यान आकर्षित करना अथवा उस की सोच को सक्रिय बनाना ही मेरा उद्देश्य है :–

1. नाटक के प्रथम खण्ड में कोरस के पारस्परिक वार्तालाप से पाठक/दर्शक को 11वीं शताब्दी के कश्मीरी हिन्दू राजओं की कूटनीतिक अबूझ का आभास होता है। राजा अनन्तदेव अपने 23 वर्षीय बुद्धिभ्रष्ट पुत्र

1– यह नाटक राजा अनन्तदेव तथा उन की पत्नी रानी सूर्यमती की व्यथा–कथा है। मगर इस में एक सम्पूर्ण नगर महत्त्वपूर्ण है, नगरवासी अहम है जो चिन्ताओं, कुचक्रों, शंकाओं तथा भयाकुल स्थितियों में जीवन व्यतीत कर रहे हैं इसी लिये उदास है। यही कारण है कि इस में कोरस बहुत महत्त्वपूर्ण है।'
'नगर उदास'–पृ०–4

कलश देव को राजगद्दी सौंप कर स्वयं हिन्दू राज सत्ता के विनाश का कारण बन जाता है। किशोरावस्था से ही महाराजा कलशदेव सुरा और सुन्दरी के आग़ोश में बैठने का अभ्यस्त है। अब राजा अनन्तदेव को परिणाम भुगतना ही होगा यह तो घटनाचक्र की स्वाभाविक परिणति है। कश्मीर में हिन्दू राजसत्ता का विनाश हिन्दू महाराजओं के द्वारा ही हुआ। इस ऐतिहासिक तथ्य को हम झुठला नहीं सकते हैं।

2. कलशदेव के सहयोगियों में विजय मित्र, पिठराज, जयानन्द, वराहदेव, जिन्दवराज इत्यादि अग्नि में घृत डालने की भूमिका निबाहते हैं। पिता और पुत्र के मध्य खाई पाटते नहीं, गहरी और चौड़ी बनादेते हैं।

3. द्वितीय खण्ड के आरम्भ में ब्राह्मणों के संवादों द्वारा समसामयिक घटनाक्रम की पुनः स्मृति पाठक / दर्शक को व्यथित कर देती है। विजयेश्वर स्वामी के सम्मुख नतमस्तक ब्राह्मण प्रार्थनारत विनीत शब्दों में निवेदन करते हैं। :–

–'द्वितीय ब्राह्मण – कश्मीर मंडल को प्रकाशित कर दे ताकि कुकर्मी प्रकट दिखाई दें और वे भाग कर वनों में शरण लें।

–'तृतीय ब्राह्मण – नहीं तो हिम–शैल में दब कर गल जायें अथवा छिप कर गुफ़ाओं और ग़ारों में शरण लें।

–'चतुर्थ ब्राह्मण – उन्हें प्रकाश और अन्धेरे से क्या प्रयोजन जो मनुष्य–रक्त के व्यापारी हैं।

–'पंचम ब्राह्मण – जो प्रजाजनों को अस्तव्यस्त कर देते हैं, हर तरह से आतंक और भय फैलाते हैं और लोगों का अपने घरों से बाहर निकलना भी दूभर करते हैं।'

'नगर उदास'–पृ०–43

4. राजा अनन्तदेव को इस बात का एहसास है कि प्रजा के साथ ज़ुल्म हो रहा है और संकट निवारण हेतु कोई न कोई उपाय करना ही पड़े गा। मनस्ताप की व्यथा सहते हुए वे स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि :–

–'अफ़सोस ! यह सब मेरा दोष है। कभी मैं ने प्रजाहित के विषय में सोचा तो कभी अपने राजघर के हित में सोचता रहा। कभी महारानी के

प्रेम पाश में फँस गया और कभी युवा पुत्र का पथ प्रदर्शक बन कर उन की सहायता करने के जनून में विभ्रष्ट हुआ।'

'नगर उदास'–पृ०–51

5. तृतीय अंक के आरम्भ में ही ठेला–मज़दूरों (भारवहक) के पारस्परिक वार्तालाप से पता चलता है कि महाराजा कलशदेव ने स्वाँग रचा थ। राजा अनन्तदेव और रानी सूर्यमती अब पुनः अपनी सारी सम्पदा ले कर ढाई महीने के बाद ही विजयेश्वर लौट आते हैं और धर्मशाला में शरण लेकर अपने पूर्व निश्चय पर खेद व्यक्त करते हैं। मनस्ताप की पीडा से वे भी व्याकुल दिखाई देते हैं।

6. कलशदेव की राक्षसी प्रकृति से क्षुब्ध होकर सूर्यमती के मन में सन्देह का काँटा चुभ जाता है कि हो ने हो कलशदेव गुर्जरी (गुजर क़बीले की स्त्री) दयावती का पुत्र है। वह एक दिन यह रहस्य जानने के हेतु दयावती से गुप्त रहस्य खोलने के लिये कई बार पूछती है पर दयावती का कहना था कि वह भी स्वयं यह नहीं जानती है कि उस दिन जिस नवजात शिशु का देहान्त हुआ था वह वास्तव में किस का पुत्र था। उसे विश्वास है कि कलशदेव को उस ने तीन वर्ष अपना दूध पिलाया था और वह सूर्यमती का ही पुत्र है। नाटक के अन्तिम खण्ड में राजा अनन्तदेव अपनी पत्नी सूर्यमती पर जो लांछन लगाता है उस का कारण भी कलशदेव ही है। परन्तु इस शंका के पीछे कई प्रश्न उभर कर सामने आते हैं जो आजतक कश्मीर के हिन्दू हतिहास में अनुत्तरित हैं।

7. चतुर्थ खण्ड भीषण अग्नि काडं की दाहक पीड़ा के साथ आरम्भ होता है। कलश देव के सहयोगीयों ने विजयानन्द के ओदेशानुसार एक पूर्व नियोजित योजना को क्रियान्वित करते हुए सम्पूर्ण विजयेश्वर नगर में आग लगादी। आग लगाने वालों का एक दल भेस बदल कर घास के व्यापारियों के रूप में नाविकाओं में विजयेश्वर पहुँचा थ। सम्पूर्ण विजयेश्वर जलकर राख हो गया और हज़ारों देश वासी अपने घर द्वार से वंचित हो गये। आश्चर्य यह है कि यह कोई विदेशी आक्रमण नहीं था अपितु प्रजारक्षक(?) महाराजा कलशदेव की नृशंस दानवलीला का नग्न नृत्य था।

8. कलशदेव राजाज्ञा के द्वारा राजा अनन्तदेव को पुनः विजयेश्वर नव–निर्माण न करने का आदेश देते हैं। सुन कर रानी सूर्यमती आग–

बबूला हो जाती है। इतना ही नहीं आदेश में अनन्तदेव पर यह आक्षेप लगाया गया कि विजयेश्वर के अग्नि कांड में उन का ही हाथ था और अब उन्हें कश्मीर छोड कर पुँछ में रहना होगा। इस प्रकार राजा अनन्तदेव को कश्मीर से निष्कासित होने का राजादेश सुनाया जाता है।

राजा अनन्तदेव क्षोभ में डूब जाते हैं और पश्चाताप की अग्नि में जल कर अपने वर्तमान पर मातम करते हुए नाटक के अन्तिम भाग में एक लम्बे कथोपकथन के द्वारा भीतरी द्वन्द्व को वाणी प्रदान करते हैं। उसे विश्वास हो जाता है कि कलशदेव लोहर वंश का नहीं हैं :–

–'जिस पुत्र को पिता के आचार–विचार, शक्ल और रूप के साथ मेल न हो, जो अपने बन्धु–बान्धवों एवं स्वजनों पर हर समय कुदृष्टि रखता हो, अवश्य जान लेना चाहिये कि वह उस वंश के बीज की उपज नहीं हैं।

'नगर उदास'–पृ०–149

9. सूर्यमती राजा अनन्त देव को बहुत कोसती है। अनन्तदेव से यह सहा नहीं जाता, वह खंजर अपने दोनों हाथों से ऊपर उठा कर अपने पेट में घोंप (भोंक) देता है और देखते ही देखते पृथ्वी पर लुढ़क कर दमतोड़ देता है। सूर्यमती हिन्दू परम्परा के अनुसार शवदाह के समय सती होने का निरार्य सुनाती है और हर्ष देव दादी माँ के निर्णय से काँप उठता है और इसी के साथ नाटक का अन्त हो जाता है।

सम्भव है कि सूर्यमती का यह निर्णय किसी बड़े षड़यंत्र की सूचना दे रहा हो।

10. इस प्रकार नाटक का अन्त ऐतिहासिक त्रासदी के रूप में हो जाता है।

<u>निष्कर्ष : 'नगर उदास' एक रचनात्मक ब्यूटि **(Beauty)**</u>

नाटक का गहन अध्ययन करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्रस्तुत नाट्य रचना रंगकर्मी नाटककार क्यमू के परिपक्व रचना कौशल, इतिहासबोध तथा विस्थापित जीवन की स्वानुभूत दाहक पीड़ा–इन तीनों तत्त्वों से युक्त एक सफल नाट्य प्रयोग है। इस नाटक में वर्तमान, हतिहास के द्वारा मुखरित हो उठा है और इतिहास, वर्तमान का संदेश वाहक बन कर अपनी अर्थवत्ता (significance) सिद्ध कर देता है। एक श्रेष्ठ नाट्य रचना

की सभी खूबियाँ, 'नगर उदास' में देखने को मिलती हैं।

हमें यह भूलना नहीं चाहिये कि क्यमू साहब स्वयं कश्मीरी लोक नाटक के विशेषज्ञ हैं। वे लोक नाटक के हर पहलू से परिचित हैं। थिएटर की उन्हें सम्यक् जानकारी है और एक कुशल रंगकर्मी के रूप में उन्हें पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। 'नगर उदास' से पूर्व उन्हों ने निम्नलिखित नाटक लिखे हैं :–

1. नाट्य संकलन 'त्रुनोव' – प्रकाशन वर्ष सन् 1966ई॰
   - अ – त्रुनोव (लेखनवर्ष सन् 1964ई॰)
   - आ – मांगय (सन् 1965 ई॰)
   - इ – मंज़ॅुलिनिकॅु
2. छ़ाय (लेखन वर्ष सन् 1965ई॰) (प्रकाशन वर्ष सन् 1972ई॰)
3. नाटक 'त्रुच' (प्रकाशन वर्ष – 1980ई॰)
   - अ – हरम खानुक ऑनॅु
   - आ – कॉन्सि मा रोवमुत 'हय क्या गोम'
   - इ – मंज़ॅुलि निकॅु (यह 'त्रुनोव' में भी संकलित है)

इन में से कई नाटकों का मंचन भी घाटी में हुआ है। 'नगर उदास' इस दिशा में नवीन प्रयोग है। यह रचना एक हेतिहासिक दस्तावेज़ के रूप में कश्मीरी नाटक साहित्य के इतिहास में स्वीकृत होगी। समकालीन जीवन की कराहती तस्वीर नाटक के कलेवर में इतिहास की पृष्ठभूमि पर अंकित नज़र आती है।

पहचान के लिये आँखें चाहिये औरअनुभव करने के हेतु घायल हृदय। ईश कृपा से क्यमू साहब के पास दोनों चीज़ें हैं अतः 'नगर उदास' नाटक विस्थापित समाज को इतिहास की याद दिला कर रुलाता भी है और वर्तमान का बिम्ब उभार कर तड़पाता भी है।

मैं इसे एक रचनात्मक ब्यूटि (Beauty) मानता हूँ।

---- *** ----

'सोनहऽर शहरस फोर कुसताम
म्य ति गव अथुँ तलुँ आदन गाम।'

'स्वर्णिम शहर को लूटा किसी ने
छूटा मुझ से गाँव बचपन का।'

कश्मीरी कवि प्रमेनाथ 'शाद' की कविताओं में विस्थापन की गहन वेदना

काज़ी बाग बड़गाम (कश्मीर) के मूल निवासी, शहीदे कर्बला हज़रत इमाम हुसैन अलैहि सलाम की सोद्दश्य शहादत से ग़मजदः (संतप्त, शोकग्रस्त) प्रभावित और प्रेरित, हुसैनी कवि सम्मेलनों के मुख्याकर्षण, 'खूनुँ सऽर कर्बला' (1987 ई॰) के लेखक, कश्मीरियत के ध्वजवाहक पण्डित प्रेम नाथ भट्ट 'शाद' विस्थापित होकर पिछले 13 वर्षों से अपने वजूद को तलाशते हुए यथार्थ के तपते शोलों की सुलगती आँच से विह्वलित ऊधमपुर में येन केन प्रकारेण जी रहे हैं, बस जी रहे हैं। अपने पैतृक निवास काज़ी बाग बड़गाम की याद आज भी उन्हें बेहद उदास कर देती है– जाने कितनी मधु मिश्रित यादें, बन्धुत्व का विश्वासघाती इतिहास – जी हाँ, इतिहास खरा और खोटा, सच और झूठ, प्रिय और अप्रिय, राजनीति से प्ररित और विशुद्ध। उसे लग रहा है कि गाँव के गोशे गोशे में 'शाद' के रोमानी ग़ज़लों की गूँज–अनुगूँज सुनाई दे रही और महसूस हो रहा है कि आज भी प्रकृति का कण–कण उस को बेसब्री के साथ तलाश रहा है।

पण्डित प्रेमनाथ भट्ट का जन्म सन् 1934 ई॰ में स्वर्गीय पण्डित सुदर्शन भट्ट के घर में काज़ीबाग बडगाँव में हुआ। मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद शिक्षक के रूप में नियुक्ति हुई और फिर बी.ए. तथा बी.एड. की परीक्षाएँ भी पास की।

सन् 1951–52 के आस पास उन्हों ने कविताएँ लिखनी शुरु कीं और एक प्रतिभा सम्पन्न युवा कवि के रूप में वे साहित्य प्रेमियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने लगे।

पण्डित अर्जुनदेव मजबूर के शब्दों में 'शाद' रोमानी कवि हैं, ग़ज़ल के शाइर हैं।.......... इन की कविताओं में मधु की मिठास और सोखनाग की रवानी है।'[1]

प्रस्तुत शोध पत्र में मैं केवल शाद की उन रचनाओं को प्रकाश में लाने का प्रयास करूँगा जो उन्हेंने विस्थापन के बाद अर्थात् मोह भंग की स्थिति में लिखी हैं। पण्डित अर्जुनदेव मजबूर के उपर लिखित कथन से मेरा कोई विरोध नहीं है लेकिन मैं 'शाद' को, उस 'शाद' को जो सन् 1990ई० के बाद आज तक समस्त विफलताओं, विरोधाभासों एवं विवशताओं के साथ जी रहा है, क़रीब से देखने का प्रयास करूँ गा। ग़ज़लगो शृंगारिक कवि 'शाद' जब यथार्थ की दाहक लपटों से झुलस जाता है तो अनुभूति पुराने साँचों (ग़ज़ल) को ही नये अन्दाज़ में रूपाकृति प्रदान करते हुए अश्रुसिक्त होकर बतिया उठती है। यहाँ इस बात का उल्लेख करना आवश्यक होगा कि प्रमेनाथ 'शाद' की कविताओं का संग्रह 'सर्व शिहुल' (सरो शीतल) शीर्षक से सन् 2001 ई० में वेली प्रिंटिग प्रेस जानीपुर–जम्मू से प्रकाशित हुआ। इस में ग़ज़लें, वच़न गीत, नज़्में (जिन में दो आज़ाद नज़्में हैं) और 6 रुबाइयाँ संगृहीत हैं। इस काव्य संग्रह को उन्हें ने आपनी माँ के प्रति समर्पित किया है। इस का अग्रलेख पण्डित अर्जुनदेव मजबूर ने लिखा है और श्री शाहिद बड़गामी ने 'शाद' के रचना कौशल पर संक्षेप में अपने विचार व्यक्त किये हैं। घर छोड़ देने की विवशता एक भीषण दुर्घटना से कम नहीं, यह उन पंजाबियों और सिन्धियों से पूछिये जिन्हें देश विभाजन के समय सन् 1947ई० में घर छोड़ कर तथा शरणार्थी बन कर नये हिन्दुस्तान में जीना पड़ा। वे पाकिस्तान छोड़ कर भारत आये और हम आज़ाद हिन्दुस्तान में ही लुटपिट कर तथा शरणार्थी बन कर जीने के लिये विवश हुए। 'शाद' भी घर छोड़ने के लिये विवश हुए। एक दिन की देरी भी घातक सिद्ध होती अतः दौड़ो–भागो (भागम भाग) की स्थिति में:–

> उतावलेपन में रह गये द्वार खुले, सांकल चढ़ी नहीं
> जाने किस को चाबियाँ सौपँ दी, चल दिया
> पग बन्धन में बान्ध दिया नवजात बाछे को

1– 'सर्वशिहुल'–प्रेमनाथ शाद–भूमिका–पण्डित अर्जुनदेव मजबूर–पृ०–5

चूमा उसे, ममता को ठुकराया, चल दिया।

'सर्व शिहुल'–पृ॰–115–116

कश्मीरी मूलरूप

नारुँ बाँबुर बर वथी हाँकल यलै
कुंजुँ ख़बर कसताम पशुँराव्यम तुँ द्रास
बन्द कोरुम न्यँट यारि मंज़ सत् ज़ाव वोछ़
म्यूठ कोरमस माय मशुँराऽवुम तुँ द्रास।

अपने ही देश के भीतर विस्थापित बन कर जीने की व्यथा मर्मान्तक पीड़ा का कारण बन जाती है। कहते हैं कि हमारा संविधान हमें हर तरह के मूलभूत अधिकारों की सुरक्षा प्रदान करता है, करता होगा ! लेकिन आज हमारी आशाएँ और आकांक्षाएँ अत्तर्राष्ट्रीय षड़यंत्र की दाहक लपटों से झुलस कर रह गई हैं। विगत की विह्वल स्मृति क्षणों में जीने को विवश कर रही है यह तो जीते जी विष घूँट निगलना है :–

–'घर खो देना छोटी बात नहीं
यह एक अलमीयः है
हादिसा
सहन करना बड़ा मुश्किल
कश्मीरी – जिसे यह सदमा पेश आया
व्याकुल है
शरीर और प्राण पीड़ाकुल हैं उस के
तड़प रही है रूह – शोकाकुल
बार – बार घाव बह उठते हैं
मीठे मधु सपने बिखर गये हैं
जवाँ आशाएँ मुर्झा गयी,
पूर्व स्मृति –
विषघूँट निगलना।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–106

मूल कश्मीरी रूप

–'गरुँ रावुन छनुँ लोकुँट कथा
यि छु अलमिया
वाऽरदाथ
व्यतरावुन स्यठाह मुश्किल

काऽशुर – यमिस यि सदमुॅ पेश आव
छु बेकरार
तमिस छि दग पानस तुॅ जानस
रूह क्रेशान वुठ फेशान
विज़ि विज़ि छोकॅन क्राऽर वोथॅान
मीठऽ तुॅ मोदुरि ख्वाब छलुॅ छाँगरि
लाव्यन अरमानन सोसुन
पोत कालुॅच याद
ज़हर ग्रोख न्यगलावुन।

घर छोड़ कर शरणार्थी कैम्पों में रहने की विवशता अपने आप में एक हादिसा है। एक तम्बू आवास अथवा एक कालकोठरी आवास कश्यपमर के लोलुॅ बोम्बुर (मतवाला भँवरा) को तड़पा देता है। वह पीछे छोड़कर आया है बाग़े बिहिश्त में अपनी इन्द्रपुरी जिस की याद आज रह रह कर उस के मानस–पटल पर बिजली के समान कौन्ध उठती है। उस ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि प्राणों की रक्षा के हेतु उसे घर छोड़ना पड़े गा या धर्म ध्वजा धारी तथाकथित मानवता के अलमबरदार (ध्वजवाहक) उस की इन्द्रपुरी को राख का ढेर बना देंगे लेकिन जब यथार्थ नग्ननृत्य करता हुआ उस की आँखों के सामने साकार हो उठा तो एक एक स्मृति चित्र उस के लिये जानलेवा बन गया। अपने ही वर्तमान पर मातम करते हुए वह राह चलते अपने साथ बतियाने लगा। अनियंत्रित होकर वह बावला गया। आख़िर सहन करने की भी एक सीमा होती है।

कहाँ अपना घर–स्वर्गप्रद और कहाँ तपते उजाड़ में आग उगलती धरती:–

–'मेरा घर – स्वर्गधाम
विभक्त कमरों में
ठाकुर द्वारा
रंग और रोग़न
खुला बरामदा
गोल रंगीन सीढ़ियाँ
पुरखों की निशानी, निवास मेरा
अबाबील का तिनका तिनका जुटा कर

सच और झूठ का सहारा लेकर
सजाया और सँवारा अवल
चान्दनी रातों में एकटक देखता
अपनी कमाई, अपनी इच्छा अपनी चाहत।'

'सर्वशिहुल'–पृ०–107

कश्मीरी मूलरूप

–'म्योन गरुॅ स्वरगुॅ दार
कमरुॅ बागनय
ठोकुर कुठ
रंग तुॅ रोगन
कुशादुॅ वरण्डा
गोल तुॅ रंगीन हेरुॅ पाऽव
वाँसुॅ वादन हिंज़ प्यडं तुॅ पुरन
काऽतजि ह्न्दि पाऽठ तुल तुल सोम्बरिथ
पोज़ तुॅ अपुज़ करिथ
शूरमुत तुॅ पूरमुत अवल
ज़ूनुॅ राऽछ़न मंज़ थलि थलि वुछान
पनुॅनी अरज़त पनुन यछुन तुॅ काँछुन।'

विस्थापन के आरम्भिक वर्षों में विस्थापित समाज की मानसिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। बहुत प्रयास करने पर भी सामान्य शरणार्थी वर्तमान के साथ समझौता नहीं कर पा रहा था। कुछ सदा के लिये मौन होगये और कुछ विक्षुप्त–अवस्था में ज़िन्दालाश के समान जीवन जीने के उपक्रम में जुट गये। विश्वास नहीं होता था कि ऐसा भी होसकता है। युवा मानस पर इस का भीषण प्रभाव पड़ा। दाम्पत्य जीवन बिखर कर तार तार हो गया। रिलीफ़ कमिश्नर के कार्यालय में कार्यरत कुछ क़लम घिसाऊ नर पिशाच अपने दानवी कुकर्मों से न केवल मानवता को कलंकित कर रहे थे अपितु जोंक की तरह रक्त चूसने की तृष्णा में सड़ी हुई लाश के इर्द गिर्द भी कुलबुलाते नज़र आते थे। कभी तीज त्योहारों की याद तड़पा देती थी तो कभीधार्मिक उत्सवों की पुनीत स्मृति हृदय के रक्त स्त्राव ज़ख़्मों को भी खरोंच देती थी। कवि के शब्दों में :–

'वाय
सोरुई रोव।' 'सर्व शिहुल'–पृ॰–109

कश्मीरी मूल रूप

–हाय
सब कुछ गँवा दिया

विरथापित जीवन की समस्त पीड़ा इस कथन में निहित है। जो भुगत रहे हैं वे इस के अर्थ से परिचित हैं, किनारे पर खड़े तमाशाबीन तो केवल मुसकुरा कर प्रसिद्ध हून मिहिरकुल (515ई॰) की दानवी क्रूरता का एहसास दिला रहे हैं। 'शाद' वस्तु स्थिति से भली भाँति परिचित है अतः रचना की एक एक पंक्ति कुलिश सदृश कठोर इतिहास की एक एक सच्चाई को रेखांकित करते हुए इतिहास के भावी अनुसंधित्सु के लिये सुरक्षित कर देती है :–

–'हाय !
गँवा दिया सब कुछ
घर का द्वार
विवाह की ताज़ा चित्रित द्वार–सज्जा
कलाकारी का नमूना
'लाँग लिव द कपुल' और
'व्यलकम' जैसे शब्द
:
शीतल परिवेश और ताज़ा सब्ज़ःज़ार
पास पड़ोसी मीत और प्रिय
नज़र पवित्र सद् व्यवहार
बन्धुत्व – प्यार· और मैत्रीभाव
हाय
गँवा दिया सब
आज नहीं कोई
तुलामुला में
टीका लगाता
नारीबन्ध बान्धता, प्रदक्षिणा करता
आरती उतारता

कोई नहीं लीपता स्रोत, नहीं करता दीपसज्जा
घंटा बजाता (मन्नत माँगता), सूत बाँधता।'

'सर्व शिहुल'–पृ०–108,109,110

कश्मीरी मूल रूप

–'वाय ....
सोरुई रोव
गरुक दरवाज़ुॅ
ताज़ुॅ ताज़ै रवान्दरुक क्रूल
कला काऽरी हुन्द नमूनुॅ
'लांग लिव द कपुल' तुॅ
'व्यलकम' हिव शब्द
:
शीतल ओन्द पोख तुॅ नीजि सब्ज़ज़ार
हक हमसायि दोस यार
श्रूच़ नज़र तुॅ रुत किरदार
माय, मोहब्बत, मिलच़ार
वाय
सोरुई रोव
अज़ छुनुॅ काहँ तुलुॅमुलि
ट्योक करान
नाऽरवन गंडान, प्रक्रम दिवान
आरती करान
अज़ छुनुॅ कुॅहुँई नाग लिवान तुॅ ज़ूल करान
गंटा वायान तुॅ दशुॅ गंडान।'

निस्सन्देह यथार्थ अत्यन्त क्रूर, असहनीय एवं कष्टदायक होता है लेकिन देवलोक के स्वप्न जीवियों ने कभी यह न सोचा था कि 19 जनवरी सन् 1990 ई० की गहन काली रात मौत का अल्टिमेटम (अन्तिमेत्थम्) लेकर लगातार नगाड़े बजा बजा कर ज़ेह्न (बुद्धि) के प्रवेश द्वार पर दस्तक देगी और जब ऐसा हुआ तो इतिहास अपने आप को दोहराने के लिये विवश हुआ। परिवार का प्रत्येक सदस्य–स्त्री, पुरुष, युवाजन एवं बच्चे इस आपदा के शिकार हुए। बेटी को आरे पर चढ़ा कर दो हिस्सों में चीरा गया

और बेटे को दिन दहाड़े खुली सड़क पर गोलियों से भून लिया गया। कई बच्चे यतीम हुए और कई बहनें विधवा। ज़ब्ह किया गया कवि और कत्ल किया गया कलाकार दोनों आज़ाद हिन्दुस्तान की भेटँ चढ़ गये। लेकिन जो बच कर निकल आये उन की शोचनीय स्थिति ग़ज़लगो शृंगारिक कवि 'शाद' को नये अन्दाज़ में सोचने के लियें विवश करती है। यथार्थ से कोई बच नहीं सकता। भला 'शाद' कैसे इस यथार्थ की उपेक्षा कर सकता था। उस के लिये तो ज़िन्दगी बेमानी हो गई थी। लिखते हैं :–

–'प्रखर धूप
चर्म अधजला
हृदय विह्वल
ग्रस लिया रोगों ने कई जनों को
कइयों के बिछुड़ गये जीवन साथी
निर्बोध बच्चे, वंचित है खेलखिलौनों से
रूठ गई उन की मुसकान
युवकों का कल धुंधराच्छादित
बुद्धिजीवियों और लेखकों की चुप्पी
संगीतकारों के गले में साँकल
पथ बिछुड़े पक्षी की हालत
अकेलेपन का एहसास
विवशता और निराशा
जीवन व्यर्थ निरर्थक।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–111

<u>*कश्मीरी मूलरूप*</u>

–'तापुॅ क्राय
चमि आमताव
तुॅ वाऽलिंज फुहान
कूत्य छि रूगव आवुरमुति
काऽत्यन जोरि जुदाऽई गाऽमुच़
न्यश बोध्यन शुर्‍यन गिन्दन कामन
तुॅ असन व्यछ़्य
नवजवानन हुन्द पगाह वुनलि वोलमुत
दाऽनिशवरन तुॅ क़लम कारन गलि ज़्यव

संगीतकारन हटिस हाँऽकल
पर छ्यनि जानावर सुँज़ बाऽश
कुनिरूक एहसास
बेकसी तुँ नावोमेदी
ज़िन्दगी बेमानी।'

विस्थापित होकर 'शाद' बहुत समय तक यह समझ नहीं पा रहे हैं कि हमारा क्या दोष था और हमें अपनी जन्मभूमि छोड़ने के लिये क्यों विवश होना पड़ा। यह कैसा बन्धुत्व। वही जो कल तक नेक (पुनीतात्मा, सदाचारी) पड़ोसी था, दुख सुख का साथी और सहभागी था, अपना सुहृद् मीत था, बन्धु था, विश्वास पात्र था, सहयोगी अथवा सहकर्मी था कुछ ही दिनों में आँखें फेर लेगा – हम ने कभी सोचा तक नहीं था। शायद वह भी कहीं विवश है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक षड़यंत्रों का शिकार अथवा षड़यंत्रकारी। वाह ! क्या चुप्पी साध ली थी। होठँ सी लिये थे पर निगाहें बदल चुकी थी। इस में सन्देह नहीं कि सम्पूर्ण भारत में कश्मीरी राजनीतिक दृष्टि से सब से अधिक जागरुक और बालिग़ है। मंझा हुआ खिलाड़ी, खेल के हरदाँव से वाकिफ़। संकट ग्रस्त 'शाद' इन्हीं ख़यालों में उलझ जाता है। वह नये माहौल में रहने के लिये विवश है। कभी कभी अपने आप पर नियंत्रण नहीं रख पा रहा है। संकट का अन्त कैसे होगा –यही सोच उसे रोमानियत के शीशमहल से बाहर निकाल पर यथार्थ की कंकरीली ठोस धरती पर पग धरने के लिये विवश करता है:–

–'क्या किया अपराध
कौन से पाप किये
क्यों मिली इतनी बड़ी सज़ा
:
विचार उभरता है
ये तब तक उभरते रहें गे
जब तक न खोया हुआ पुनः प्राप्त हो
:
यही मेरे हृदय की धड़कन है।'

'सर्व शिहुल'–पृ०–112

कश्मीरी मूलरूप

—'खता क्या कोर
कम पाप कऽर
क्याज़ि म्यूल यूत बोड़ सज़ा
ख़याल छु वोतलान
यिम रोज़न तोत ताम वोतलान
योत ताम रोवमुत लबनुँ यियी
:
यि छि म्यानि दिलुँच दुबराय।'

पण्डित प्रेम नाथ 'शाद' ने बड़ीख़ूबी के साथ विस्थापन की व्यथा–कथा को अर्थात् अपने भोगे हुए कल और आज को–इतिहास को–ग़ज़ल के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की। ग़ज़ल का हर शे'र अपने आप में पूर्ण और स्वतंत्र होता है। गज़ल की रूह इश्क़ में बसी है लेकिन यहाँ भी मामला इश्क़ का ही तो है। अपने वतन से इश्क़, 'पनुन कश्मीर' से इश्क़, यहाँ के ज़र्रे ज़र्रे से इश्क़, जड़ और चेतन प्रकृति से इश्क़, चहकते बुलबुल और महकती कलियों से इश्क़, लालः ज़ारों और मुखर आबशारों से इश्क़, देवभूमि के कण–कण से इश्क़। विस्थापित होकर 'शाद' को महसूस हो रहा है कि लुटेरे ने जो लूट लिया तो छूट गया मुझ से मेरा गाँव–मीत बचपन का :–

—'स्वर्णिम शहर को लूटा किसी ने
छूटा मुझ से गाँव बचपन का
एक एक पहर है क़हर अज़ाब (दैवीकोप)
भव्य प्रसिद्धि बस बदनाम
क़दम क़दम में बारूद की बू है
पांचाल की ओर पंक्ति बन्धी है
भावनाओं को कुचल दिया है
बदल गई आँखें, निर्ल्लज चेहरे।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–15–16

कश्मीरी मूलरूप

—'सोनहाऽर शहरस फोर कुस्ताम
म्य ति गव अथुँ तलुँ आदन गाम

अक अक पहर छु क़हर अज़ाब
असुँवुनि शोहरथ बस बदनाम
क़दमस क़दमस शोरुँच बोय
पांछ़ालस कुन लाऽजमुच़लाम
मोछ मूरन लाऽज जज़बातन
आऽछ गई फीरिथ बुथ गव त्राम।

लाखों की संख्या में कश्मीर के मूलनिवासी जो पिछले पाँच हज़ार से भी अधिक वर्षों से कश्मीर घटी में रहते चले आये हैं, कश्मीर छोड़ने के लिये विवश हुए। मैं ने स्वयं अपनी आँखों से जम्मू–शिव नगर में एक दिन प्रातः अर्द्धविक्षप्तावस्था में एक वृध्द विस्थापित बन्धु को गाय की पूँछ पकड़ कर उस के पीछे पीछे तेज़क़दमों से चलते हुए ज़ार ज़ार रोते देखा है। यह घटना जून सन् 1991 ई॰ की है। उस की दयनीय दशा देख कर मुझ से रहा न गया। मैं ने उस को सम्भालने की कोशिश की और इस प्रकार गाय की पूँछ पकड़ कर पीछे पीछे भागने का कारण पूछा। रोते हुए उस बन्धु ने कहा–मैं अपनी दो जरसी नस्ल की गायों को हुटमुरा में पीछे छोड़ आया हूँ – फूलों की मालायें पहना कर – हर रात सपने में दोनों मुझे पुकारती रहती है और मैं अशान्तावस्था में अपने आप को नियंत्रित नहीं रख पा रहा हूँ। मेरे व्यक्तिगत जीवन के इस अनुभव को तनिक 'शाद' की एक ग़ज़ल के अश्आर में देखिये, कलेजा मुँह को आता है :–

–'गोमाता को पहनाई गेंदे की माला
अलसी खली की एक मुठी सूखी ही खिलाई, चलदिया।
पदबन्धन में बाँधदिया नवजात बाछे को
चूमा उसे, ममता को ठुकराया, चलदिया।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–115

<u>*कश्मीरी मूल रूप*</u>

–'गाऽव त्राऽवुम नाऽल जाफुँर पोशिमाल
अलिशी खाऽज मोठ अक होछी ख्याऽवुम तुँ द्रास
बन्द कोरूम न्यटियारि मंज़ सत ज़ाव वोछ़
म्यूठ कोरमस माय मशिराऽवुम तुँ द्रास।'

यही कारण है कि 'शाद' धर्मान्ध मानव की दानव लीला से त्रस्त भयाकुलावस्था में तड़प तड़प कर पुकार उठता है :–

—'विह्वलित हुए, तेजस् मलने लगा हाथ
रूह पर झपट्टा मार कर भागा कोई
निश्तर (निगाह रूपी) तो कभी ज़ोर से हँसा देता है
और कभी हृदय चीर कर उतर जाता है
चकित, स्तब्ध, दमघुटी बस्ती है शाद
पशु—प्रकृति को क्या दोगे दोष

<u>कश्मीर मूलरूप</u>

—'वेह प्यव तेह लाऽजमूरुॅनि गुलि
रूहस थफ दिथ चोल कुसताम
निस्तर गाहे दिसुॅनावान
गाह वोथ कूरान जिगरस ताम
हयबुँगुॅ दम फुटि बस्ती शाद
पोश प्रकृछ़ क्या दिख इलज़ाम।'

विस्थापन से जुड़ी 'शाद' की कविताओं में स्मृति—चित्रों का अपना विशेष महत्त्व रहा है। स्मृति का सम्बन्ध विगत कालीन अनुभवों के साथ होता है। विस्थापन की कविता का यह एक प्रमुख आकर्षण है कि विस्थपित समाज का कल—अर्थात् बीता हुआ कल इतिहास के मल्लबे के नीचे न दब कर रचनाकार की सृजन प्रक्रिया का पूरक एवं सक्रिय सहायक बन गया है। इस समाज का हज़ारों वर्षों का भव्य इतिहास आज पूर्णरूपेण सुरक्षित नहीं। जाने क्यों एक ही कल्हण पण्डित शेष रह गया। यह एक विचारणीय विषय है तब शायद कोई बुतशिकन का पूर्वज वह दुस्साहस नहीं कर सका जो उस क्रूर बादशाह और उस के सहयोगियों ने किया। लेकिन आज का रचनाकार अपने दायित्व के प्रति सचेत है। यह सत्य है कि पिछले 12—13 वर्षों में कई भाषाओं के माध्यम से साहित्य की विविध विधाओं के द्वारा विस्थपित समाज का भूत, भविष्य एवं वर्तमान मुखर हो उठा है।

'शाद' आज प्रकृति के भीषण प्रकोप को सहते हुए अपने बीते हुए कल पर भी एक नज़र डाल ही लेते हैं। वह किसी भी स्थिति में अपने आप को बीते हुए कल से जुदा नहीं कर पा रहे हैं। उस की जड़े मज़बूती के साथ मातृभूमि की मिट्टी में गड़ी हुई हैं। आज भी रह रह कर एक एक स्मृति चित्र उस के मानस पटल पर एक फ़्लैश के समान उसी प्रकार कौंधँ

उठता है जैसे टेलीविजन के स्क्रीन पर पूर्व दृश्य अथवा पूर्व घटना का चित्र एक फ़्लैश के रूप में हमारी आँखों के सामने साकार हो उठता है। अपनी मातृभूमि के नाना रंग रूप आज उसे अधीर कर देते हैं, एक एक स्मृति चित्र अभिव्यति का सशक्त आधार बन पुनः मूर्त हो उठता है :–

–'वहाँ का हर गोशा मेरी आँखों के सम्मुख है
वजूद को ठंडक पहुँचाता दिगनिबल[1] है
वह शीतल जल स्रोत ग्यवथीर[2] दामन
पहाड़ी नद के गोल पत्थर, ह्दय में छिपाए लाल हैं।
घर पुरखों का, आँगन में सुखद सूर्य प्रकाश
रात्रि में चमक उठता ख़यालों का महल है
क़द्दावर चिनार का व्यापक फैलाव पर्याप्त छाँह
आत्म शान्ति आनन्द स्वप्नफल है
निशात के सरो वृक्ष हरियाली ढेर फूलों के
शीशे में प्रतिबिम्ब दिखाता डल है।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–22–23

<u>*कश्मीरी मूल रूप*</u>

–'तत्युक प्रथ गोशि सनमोख नज़रितल छुम
वजूदॅच स्वर्ग शेहलथ दिगनॅबल छुम
स्व शीतल नाग जोय ग्यवथीर दामुन
वछस मंज़ लाल राऽछ़रिथ आऱ्‍ॅ पल छुम
पुरन प्यडं आनगनस सोख सिरयि प्रागाश
शब्स ज़ोतान ख़यालन हुन्द महल छुम
कदावर बोनि छज शेहजार वाऽफिर
रुहुक राहत बशाशत स्वप्न फल छुम
निशातुक सर्व सबज़ार पोशि अम्बार
अक्स आऽनंस अन्दर हावान डल छुम।'

---

1. बड़गाम कश्मीर में एक अत्यंत आकर्षक लघु जल प्रपात।
2. एक बूटी जो बलग़म इत्यादि के लिये औषधि के रूप में प्रयोग में लाई जाती है।

पीड़ित प्रताड़ित, देश निष्कासित विस्थापित के दिल और दिमाग़ को आज भी नक़ाबपोश उग्रवादी की भयावह स्मृति रक्तधमनियों में प्रवाहित रक्तसंचार को रोक देती है। मौत के ये व्यापारी मात्र अपने आक़ा के इशारे पर बन्दूक का घोड़ा दबा कर निहत्थे निस्सहाय निर्दोष अपने ही देशवासियों को मौत की नींद सुला देते हैं। विचार और तर्क की सब खिड़कियाँ बन्द कर के ये बड़ी ख़ूबी के साथ यमदूत की भूमिका निबाह देते हैं। आज कल आत्मघाती 'ट्रिगर हेप्पी' आतंकवादी दावा बोल कर एक ही वार में कई निर्दोषों को क्षत–विक्षत कर देते हैं। 13 वर्ष पूर्व हम सोच भी नहीं सकते थे कि कश्मीरी युवा मानस में विद्रोह की चिनगारी इस क़दर भड़क उठे गी कि भारत का पहले से ही कमज़ोर शासनतंत्र भी त्रस्त हो उठे गा। यह तो ज्वाला मुखी का फटन हुआ और उबलता लावा सारे देश में फैल गया। 'शाद' बड़ी सावधानी के साथ सांकेतिक भाषा में नक़ाब पोश उग्रपंथी की उपस्थिति का यों आभास दिलाते हैंः–

–'भीषण छायाओं के ये स्वाँग
अफलित स्वपनों का हुआ नीलाम
शाद बस्ती है चकित, स्तब्ध, दमघुटी
पशु प्रकृति को क्या दोगे दोष।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–18

(अथवा)

अभी दिल की धड़कनें सम्भल गई थी हुए थे भीति मुक्त
नीचे किसी ने साँकल खटखटाई।

'सर्व शिहुल'–पृ॰–26

(अथवा)

देख के सिहर उठोगे, काली आकृतियाँ यहाँ जब नृत्यकरेंगी
अभी समय है, धो लो सोच का मल कुछ उपाय करो।

'सर्व शिहुल'–पृ॰–38

कश्मीरी मूल रूप

–'वाऽनाख छ़ायन हन्दुॅ यिम विह
अनहाऽर ख़ाबन गव लीलाम
हय बुँगुॅ दम फुटि बस्ती शाद
पोश प्रकृछ़ क्या दिख इलज़ाम।'

(अथवा)

वुनि त्रोव दिलॅ दुबरायौ फ्रख
बोनॅु कोर काऽम ताम हाँकलि ठस।

(अथवा)

फटि तीऽर वुछिथ यलि रक़्स करन यति शकलि सियाह
वुनि वख छू काऽसिव सोचस मल केहँ चारॅु करिव।'

13 वर्षीय विस्थापित जीवन के अनुभव 'शाद' को न केवल ग़मगीन बना देते हैं अपितु उन की सोच में भी परिवर्तन हो जाता है। 40^0 डिग्री से लेकर 47^0 डिग्री स्यलशस भीषण गरमी के दिनों में जम्मू तथा ऊधमपुर में जीवन यापन करना कोई सामन्य बात नहीं है काज़ीबाग बड़गाँव की पुरफ़िज़ा प्रकृति की गोद में रहने वाले प्रेम नाथ 'शाद' के लिये। एक एक दिन एक एक क़यामत बनकर जनून (उन्माद) की स्थिति उत्पन्न कर देता है। यहाँ ग्रीष्मकाल उतना कष्टदायक नहीं जितना बरसात। उमस कई गुना बड़ा जाती है। आदमी बेक़रार हो जाता है। खाने को जी नहीं करता। बस पसीना, पसीना और पसीना। ऐसी स्थिति में कभी कभी नसीमबाग श्रीनगर की याद तलातुम मचा देती है। अहरबल का फेनिल जलप्रपात, दिनढले डल झील में तैरती नाविका में बैठी चप्पू चलाती मीठी तान छेड़ती युवा मल्लाहिन और उस के गीत की अनुगूँज अथवा यूसमर्ग और नीलनाग की शीतल छाँह, गंगबल का अमृततुल्य गंगाजल और बुथशेर का गहन वन, सिन्धु नाले का कोलाहलमय प्रवाह और वितस्ता की शान्त गम्भीर मुद्रा और न जाने क्या क्या ! सोचका क्रम टूट जाता है और कवि अश्रुसिक्त मुद्रा में पुकार उठता है :–

–'सह लिया बिछोह तो जन्मा तलातुम
यह तन्हाई और तपती धूप हासिल
मार्ग अवरुद्ध वाणी पर मानो रोक लगी है
विवश कायाओं को तपन से झुलसना हासिल
दमघुटी आकांक्षाएँ दिल टूट गया 'शाद' का
कलेजा रक्त भरा निरत अश्रु प्रवाह हासिल।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–28–29

<u>*कश्मीरी मूल रूप*</u>

व्यतुर दूस्यर दिलुक थनॅु प्यव तलोतुम

यि तन्हाऽई तुॅ तापॅुन क्राय हाऽसिल
वतन बन्दिश कथन ज़न ठाख लोगमुत
बेकस कायन छि फाऽटमुच़ लाय हाऽसिल
लितॅुर लाऽज हावसन शादस शिठ्योव दिल
जिग्र ख़ूनी अशिस ददराय हाऽसिल।

इस वस्तुस्थिति से नेताजन लाभ उठा कर अपनी नेतागिरी का झण्डा गाढ़ देते हैं। आख़िर उन्हें भी तो करने के लिये कोई काम चाहिये और काम करने से ही स्वास्थ्य अच्छा रहता है। इस में सन्देह नहीं कि देश में प्रचलित राजनीति से विस्थापित समाज का सब से अधिक अहित हुआ। राष्ट्रीय स्तर पर नेताओं का वावैला, कस्मेंवादे, जोशीले भाषण, प्रेस नोट, टेलीविजन के स्क्रीन पर धमकी भरे लहजे में बयानबाज़ी और तत्पश्चात् एक लम्बी चुप्पी–गहरी नींद और टैं–टैं फिस। 'शाद' वस्तुस्थिति से भली भाँती परिचित है, उन्हें मालूम है कि कौन कितने गहरे पानी में है इस लिये व्यंग्य की मुद्रा में यथार्थ को 'शुगर कोटिड़' (मिठास लेपन) टेबल्यट के समान यों पेश करते हैं :–

–'सुध है तुझे अपने आप की क्या ?
मेरे जीने की चिन्ता ज़माने को है क्या ?
धरा अवगत है भूँचाल, बाढ़ और तूफ़ान से
आसमान को तनिक भी एहसास है क्या?

'सर्व शिहुल'–पृ॰–30–31

कश्मीरी मूलरूप

'पनॅुनि पानॅुच खबर म्य पानस छा
म्यानि लसनॅुच फ़िक्र ज़मानस छा
ज़ानि बुतराथ बुनिल, तूफ़ान साऽलाब
ज़रॅु तुॅ एहसास आसमानस छा।'

एक क्षण के लिये कवि हताश होकर परवश होजाता है। उस के मानस को उमड़ती काली घटाओं ने ढक लिया है और अभी भी घटाएँ उमड़कर सारी सृष्टि को जलमग्न कर देंगी। गहन तमस में वह न कुछ देख सकता है और न कुछ सोच सकता है। लोग सुन कर भी अनसुनी कर देते हैं। टुकड़ों में बट कर जीने की हमारी आदत है और आज यही आदत हमारी सब से बड़ी कमज़ोरी बन गयी है। देश के एक खण्ड में सब से अधिक

जागरुक समाज को देश निकाला मिला है और हम टस से मस नहीं होते। गहन घटाओं में प्रकाश की एक किरण को तलाशते हुए कवि तनिक भावनाओं के आवेश में आकर कवि कर्म के साथ उपदेश की चाशनी मिला कर एहसास को जगाने का प्रयास करते हुए लिखते हैं :–

–'कोई करे व्यवस्था प्रकाश की
यहाँ क्या दीपक स्नेह हीन हो गये?
रूई निकाल दो कानों के भीतर से
स्वयं अपने पोषक बन जाओ
डुबकी लगा कर मथलो विचार समुद्र
आँखों के सामने घुमा लो चरखी
शाद भयाकुल तड़प रहा है
अक्षर अक्षर मसि की शोख़ी उतर गई।'

'सर्व शिहुल'–34–35

कश्मीरी मूल रूप

–'कांछ़ाह काऽरतव गाशुॅ सबील
यति क्या च़ाँग्यन मोक्लयोव तील
कन गोगलव मंज़ुॅ फम्ब काऽड़तव
पानस बनितव पानुॅ कफ़ील
डुँग दिथ मंदितव सोचुॅ सदुर
नज़रन ब्रोंह कनि फिरतव रील
शादस तेलान गव तलवास
हरफ़स हरफ़स छाऽच़ गयि मील।'

(अथवा)

'कहीं यहाँ गरज न उठे खुला आकाश, कुछ उपाय करो
कहीं सतीसर जलमग्न न हो जाये, कुछ उपाय करो
सारी उम्र लगा कर स्थापित की है परम्परा
पलक झपकते ही चेहरे पर हवाइयाँ उड़ न जाये, कुछ उपाय करो।'

'सर्व शिहुल'–पृ०–37

कश्मीरी मूल रूप

–'यति युथ नुॅ नऽनी नबुॅ गछ़ि वज़मुल केंह चारुॅ करिव
फटि युथ न सतीसर पाऽनिसतल केंह चारुॅ करिव

खर्चाऽविथ साऽरी वाँऽस खायत काऽर क़ाऽयिम

टिट वारन मंज़ गछ़ि अदल वदल, केंह चारुँ करिव।'

विस्थापित होकर कैम्प में जीवन जीना अपने आप में एक विकट समस्या है, एक भीषण अनुभूति है, एक तल्ख़ हक़ीक़त है। ऐसा लग रहा है कि ज़मीन खिसक गई है और आसमान सर पर टूट पड़ा है। मान्यताएँ और विश्वास, आचार और विचार, रीति रिवाज और परम्पराएँ सब अर्थहीन शब्द बन गये हैं। देवालय में जाने से पहले रिलीफ़ कमिशनर के दफ़तर में हाज़िरी देना और तलवे चाटना निहायत ज़रूरी है। आज ज़िन्दा रहने के लिये सब कुछ करना पड़ रहा है। न चैन दिन में और न करार रात को। किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि हम सब के साथ विश्वासघात हुआ है अतः दूध का जला छाछ भी फूँक फूँक कर पी रहा है। एक दहाई गुज़र गई फिर भी देश की कीटणु ग्रस्त राजनीति में कोई हरकत दिखाई नहीं देती। शाइर ग़ज़ल के अश्आर द्वारा इसी तल्ख़ हक़ीक़त को व्यंग्य वाणी प्रदान करते हुए अपनी बेबसी पर शोकाकुल हो उठते हैं :–

–'एक आवारा, न कहीं दिन और न रात

कठिन परिश्रम से घिस गये तलवे।

एक मोहित है जीवन पर, मृत्यु को भूल चुका है

दूजा जीवित है निज काया पर क़फ़न ओढ़े

मैं ने शाद रहस्य की बात कही है, गुप्त रखना

तिस पर तेरी ही जुबान से दुनिया ने सुन लिया है।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–44

कश्मीरी मूल रूप

–'अखा आवारुँ नय कुनि रात नय दोह

लतन हुन्द माज़ लार्स्योमुत वतन हे

अखा मोत ज़िन्दगी तस मौत मोशुमुत

ज़िन्दै ब्याखा वलिथ पानस क़फ़न हे

म्य वोनमुत शाद सिर छुम राऽछ कऽरज़्यस

पतौ चाने ज़बाऽन बूज़ दुनियहन हे।'

मई–जून–जुलाई की तपन और काल कोठरी नुमा कैम्प का एक कमरा आवास। कभी कभी मैं सोचता हूँ कि यदि किसी बड़े नेता को इस एक

कमरा आवास में 24 घण्टे रहने के लिये विवश किया जाये तो कितने सेकंड वे रह पायें गे शायद किसी इलकत्रानिक मीडिया सेन्टर की 'समय बताओ' घड़ी ही बता पाये गी। शाइर आज इसी उमस और तपन भरे माहौल में जीने के लिये विवश है। अरे वर्षों उस ने भव्य चिनार की छाँह में मस्ती की है आज समय ने उसे पीछे छोड़ दिया है। हालांकि बहुत सोच कर 'शाद' ने जम्मू के बदले ऊधमपुर में रहने का फ़ैसला किया था लेकिन उस के भीतर जो आग सुलग रही है, अंगारे दहक रहे हैं। अरमान (इच्छा) एक के बाद एक झुलस जाते हैं वह उन की टीस (कसक) से विह्वल हो उठता है :–

–'यात्रा अधूरी, एक ठिकाने पर डेरा डाला
भागते समय ने पीछे छोड़ दिया
हथेली में किस ने कै़द किया हवा को
पत्ते में भी कहीं कोई हरकत नहीं'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–46

कश्मीरी मूलरूप

–'अडवति माटस त्रोवुम थक
चलवुनि वख़्तन त्रोवुस पथ
मोछि मंज़ कॅम्य कोर काऽद हवा
पनुॅ बाऽरगस छनुॅ कुनि हरकत।'

(अथवा)

'छाँह चिनार की छलती रही
अग्नि लपटों को वक्षपर लेना पड़ा।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–54

कश्मीरी मूल रूप

'बोनि शिहुल भ्रमरावान रूद
नारुॅ ब्रहन वछ छावुन प्योम।'

कवि का उदास मन तड़प रहा है और यही तड़पन आज ग़ज़ल के अश्आर को भी ग़मगीन बना देती है:–

'ग्रस लिया उदासी ने शाद, आकांक्षाएँ निष्फल व्यर्थ हुई हैं।'

'सर्व शिहल'–पृ–50

कश्मीरी मूल रूप

'वोदाऽसी नाल वोलमुत 'शाद' हावस थामि गाऽमुँत छिम।'
'शाद' को पूर्ण विश्वास है कि :–

'वन्दुँ चलि शीन गलि बेयि यी बहार'[1]

–'महजूर'

अतः 'महजूरुँ' लोलुक साज़ थव तैयार'–यह आशावादी स्वर जीवन के प्रति उन के स्वस्थ दृष्टिकोण की गवाही दे रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि पापाचारी बुतशिकन के बाद बड़शाह (1420 ई॰–1470 ई॰) ने 50 वर्ष कश्मीर में राज्य किया और अल्पसंख्यकों को पुनःसम्मान सहित जीवन जीने की सुविधाएँ प्रदान की। गहन घटाटोप के बाद प्रकाश की स्वर्णिम किरणें पुनःखिल उठेंगी और ऋषि वाटिका में अलमदार के श्रुक (श्लोक) और लल्लेश्वरी के वाख (वाक्) एक साथ गूंजे उठें गे। बहुत ही सुन्दर और मीठा सपना है और स्वप्न जीवी बनना कोई पाप नहीं – हाँ, यथार्थ से मुहँ मोड़ना पाप है। भविष्य के प्रति आशावान रहना और जीवन के प्रति स्वस्थ स्वीकारात्मक दृष्टिकोण को ग्रहण करना वस्तुतः जीवन जीने की चाह को ही दर्शाता है। 'शाद' लिखते हैं :–

–'वह घड़ी पुनः आयेगी शाद है आशावादी
उस ने रहमत के साधन जुटायें होंगे।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–53

कश्मीरी मूल रूप

'स्व विज़ बेयि वाति शादस आश बाकी
ताऽम आसन रहमतुँक सामानुं काऽरमुँत।'

तीर्थस्थल, गाँव देश, रम्य प्रकृति, चल–अचल सम्पत्ति घर द्वार सब कुछ खो देने की व्यथा निस्सन्देह असहनीय है लेकिन अपनी पहचान को खो देने की पीड़ा इस से कहीं अधिक जानलेवा है। आज विस्थापित समाज अपनी इसी खोई हुई पहचान की तलाश में 'पनुन कश्मीर' को पाने के हेतु व्यग्र दिखाई दे रहा है। आख़िर कब तक हमारा शोषण होता रहे गा। आज हम क्या से

1– शीत काल होगा समाप्त, बर्फ़ पिघल जाये गी, पुनः खिल उठेगा बसन्त
महजूर प्रेम के साज़ (वाद्य) को तैयार रखना।'
'कुलियात महजूर'–जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी प्रकाशन–सन्
1983ई॰–पृ॰–275

क्या हो गये हैं। वामन (8वीं शती), उद्भट (8वीं शती), रुद्रट (9वीं शती), आनन्दवर्धन (9वीं शती), महाकवि रत्नाकर (9वीं शती), अभिनवगुप्त (10वीं शती), मम्मट (11वीं शती), क्षेमेन्द्र (11वीं शती), बिल्हण (11–12वीं शती), रूय्यक और मङ्खक (12वीं शती), कल्हण पण्डित (12वीं शती) तथा जगद्धर भट्ट (14वीं शती) के वंशज आज अपने खोये हुए अस्तित्व की तलाश में भटक रहे हैं। लगता है देश में ज़ालिम अफ़गानों का रज्य लौट आया है। आज मँगते की दुर्दशा भोगते हुए जीवन की सूनी डगर पर भटके हुए राही की तरह निरुद्देश्य डग भरते हुए दिखाई दे रहे हैं–कुछ विस्थापित बन्धु। उस पर तुर्रा यह कि हम विश्व के महान प्रजातंत्र के स्वतंत्र नागारिक हैं। 'शाद' ने भी हम सब की तरह सब कुछ खो दिया है अतः अपनी सांस्कृतिक विरासत के खो देने पर मातम करते हुए लिखते हैं :–

–'गवाँ देने की गहन व्यथा सहता आया
हंसमुख मुद्रा में अश्रु बहाता आया
बात करने का नहीं रहा अवसर
दम घुटे ह्रदय को रक्त पिलाना पड़ा
घायल शरीर से पपड़ी खरोंची
कंटीले फ़र्श पर सुलाना पड़ा
कलेजे का रक्त रखा था सम्भाल कर
वीरान राहों पर लुटाना पड़ा
रेताम्बर में उलझ गये, किनारा दूर है दूर
वाणी विफल हुई, संकेतों से दिखाना पड़ा।'

सर्व शिहुल'–पृ॰–54–55

<u>कश्मीरी मूलरूप</u>

–'रावन त्यो'ल ललुँनावुन प्योम
असवुनि होंजि ओश त्रावुन प्योम
कथ करनस मा रूदुम वार
दूम फुटि दिल रथ चावुन प्योम
छोकुँ दाऽव बदनस नहविम क्राऽर
काँऽड फरशस प्यठ सावुन प्योम
राऽछरिथ ओसुम जिगरुकख़ून
वाऽरान वति छकरावुन प्योम।

शाठन वोलनस दूस्योम घाठ
कथ गई अथवुई हावुन प्योम।'

अपने आशावादी दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए 'शाद' प्रकृति के संकेतों के माध्यम से उपवन के पुष्पित होने की कामना करते हुए स्वच्छ नीले आकाश की स्वर्ण रश्मियों की स्मृति दिलाते हुए लिखते हैं :—

—'यह मौसिम बदल जाता ! खिल उठते पुष्प
अब हरमोख (हरमुकुट) के दामन में पवित्र सोते फूट पड़ते
कब तक नीले आकाश के मस्तक पर तनी भौंहे देखेंगे
काले बादल खण्ड खण्ड होकर छितरा जाते।'

'सर्व शिहुल'—पृ॰—57

कश्मीरी मूल रूप

—'यि मोसम बदलिना कोसम फोलनना
वन्य हर मोख दामनस ज़म ज़म वुज़नना
कोताम नीलिस नबस डेशव ड्यकस द्रुहि
स्याह ओबरस अलग पन—पन गछ़न ना।'

पुनः उठना होगा, किसी भी तरह से भीषण वस्तु स्थिति का सामना करते हुए हमें आने वाले कल के प्रति आशावान बनना होगा नहीं तो वजूद ही मिट जाये गा और शेष रह जाये गी हमारे अस्तित्व की सत्य—असत्य कथा इतिहास के पन्नों पर।

अतःसम्भल कर फिर जीने का प्रयास करना होगा। यह बहुत ज़रूरी है। बहादुर पंजाबी और परिश्रमी व्यवहार चतुर सिन्धी जाति के लोगों से हमें प्रेरणा ग्रहण करनी होगी। यह आज होगा तो बेहतर है, कल तक देर हो जाये गी :—

—'धराशायी हो कर फिर उठना है, सम्भलना है
किस की आश रखें , प्रतीक्षा करें किस की अब
दृष्टि स्वयं दिखाये गी अक़्स (प्रतिबिम्ब) तुम्हारे सफ़र का
अन्धेरों में छिपा प्रकाश—स्तम्भ ढूँढना
आकाश की ऊँचाई पाना, नाम लिखाना नभ पर
तल तक ढूँढ ढूँढ कर अनमोल मोती निकालना
डटकर मुक़ाबले पर आना, एहसास नहीं गँवाना

'शाद' ढूँढ लेना अर्थ वक्र कथन में।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–88

<u>*कश्मीरी मूल रूप*</u>

–'पत्थर प्यथ छु हलबल करून बेयि सन्दारून
काऽहंज़ आश थावव कमिस वोन्य छु प्रारुन
नज़र हावि पानै अक्स चानि सफ़रुक
गटन मंज़ गुपिथ गाशि मीनार छ़ारुन
थज्र तियुथ प्रावुन नबस नाव लेखुन
ज़ुविस ज़ाऽलदिथ छुई मोलुल मोख्तुँखारुन
सिपर सीनुँकर युथ नुँ एहसास रावी
तगी शाद वुठुँ वुठुँ कथन मानि छ़ारुन।'

कभी कभी हताश होकर 'शाद' रक्त पिपासु उग्रवादी के सम्मुख अपने हृदय की बात व्यक्त करते हुए उस केभीतर दमघुटे देवता को पुनः शक्ति सम्पन्न होने की फ़रियाद (प्रार्थना) करते हैं। अश्आर के संवेद्य में इतिहास की एक दुखद सच्चाई निहित है जिसे के द्वारा कवि के मानस की गहन पीड़ा भी मुखर हो उठती है। समझने वाले तो समझ जायें गे, ना समझे तो............

–'रक्त की कर दी हिस्सा–बंटाई, क्या प्राप्त हुआ, कह दो
केवल अफ़सोस हाथ लगा, कह दो
ईश ने दी थी तुझे आँखों की दृष्टि
पथ भ्रष्ट हुए मिला कहाँ राहचोक[1] कह दो
विष फैलाया जुदा किया मांस से नाखुन
भाई को शुत्र बनाया भाई का, कह दो
तेज़ाब फेकाँ, चमन में दहन की बू आई
फूलों से सुगन्ध छीन ली, कह दो।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–59

<u>*कश्मीरी मूलरूप*</u>

–'रतस भागै करुँथ क्या द्रोय वनतम
फ़कत अफ़सोस हाऽसिल ओय वनतम
च़्य ओसुई कोदरतन दितमुत अँछन गाश

1– परम्परागत विश्वासानुसार एक अदृश्य आसुरी शक्ति जो लोगें को ग़लत रास्ते पर भटका देती है।

डोलुख राहचोक कति समख्योय वनतम
ज़हर वोहरुथ कोरुथ छ्यन नम तुँ माज़स
कोरुथ दुशमन च़्य बाऽयिस बोय वनतम
छोकुथ तेज़ाब आमुन आव चमनस
मुहित पोशन नियथ खोशबोय वनतम।'

अपनी मातृभूमि से बिछुड़ कर वर्षों अलग रहना बड़ा कष्ट दायक होता है। कभी कभी तो मात्र एक स्मृति ही हृदय में तूफ़ान खड़ा कर देती है। अपने देश की मिट्टी में सना अंग अंग सिहर उठता है और 'ज़ुव छुम ब्रमान गरुँ गछुँ हा'[1] की कैफ़ीयत छा जाती है। यादों की दुनिया में खोजाना कभी–कभी बड़ा कष्ट दायक होता है भाई, नहीं तो 'शाद' यह कहने पर विवश नहीं होते :–

–'याद आया मानो सौ सीढ़ियाँ नीचे लुढ़का
जो विपदा टूट पड़ी, छुपाऊँ उस को कबतक
यह एकान्त चीर रहा कलेजा नश्तर ले कर
घावों की पीड़ा सह लूँ मैं कब तक
बहार और शालमार पर पड़ गई कुदृष्टि
पद यात्री बना रहूँ मरु भूमि में कब तक।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–62

कश्मीरी मूल रूप

–'च़्यतस प्यव ज़न हतस पाऽविस वसिथ गोस
बनुन गुदरुन खटिथ थावन कोतॉमथ
यि तनहाऽई जिग्र कूरान खंजर ह्यथ
छोकन हिंज़ दग ब्व व्यतरावन कोतॉमथ
बहारस शालमारस बद नज़र लाऽज
पदयन प्यठ फेरुँ सहरावन कोत तामथ।'

और कभी पूर्णतः हताश होकर पुकार उठता है :–

–'सपने बिखर गये लगा कुछ नहीं हाथ
अपुष्पित अर्मानों को दफ़नाती हूँ, मेरी आयु तुझे लग जाये।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–72

कश्मीरी मूल रूप

1. 'जाँ (जान) मचल रही है घर जाने के हेतु'–ललद्यद

'छलुँ छाँगुॅर गई म्यान्यन ख़ाबन केहँ नो हाऽसिल आम
अनहाऽर अरमान छस दफ़नावन लगिनय म्योनुई आय।'

विभिन्न मनः स्थितियों के ये रूप चित्र वस्तुतः व्यथा की गहराई का बोध कराते हुए इंसानी वजूद के बौनेपन पर भी चोट करते हैं।

हर वर्ष बसन्तागमन पर बादामवृक्षों की टहनियों में नई कोंपलें फूट पड़ती हैं और देखते ही देखते कुछ ही दिनों में बादाम के वृक्ष पुष्पित हो उठते हैं। नन्हें नन्हें ललाई युक्त श्वेत पुष्पों से अलंकृत प्रकृति पुनः मिलन के हेतु आतुर हो उठी है। श्रृंगार के समस्त साधनों का प्रयोग करते हुए सजधज कर संवर कर सांवरिया (साँवलिया) से बतियाने के हेतु प्रतीक्षारत दिखाई देती है। 'शाद' का एक वच़नगीत 'बादामन मा बामनद्राय' एक प्रभावशाली कलात्मक रचना है जो उन्हें हर वर्ष वसन्तागमन पर मातृभूमि के पुनः पुष्पित होने की स्मृति दिला कर व्यग्र कर देती है। बड़ी नाज़ुक अनुभूति यथार्थ के आँच से झुलस जाती है। मेरा विचार है कि विस्थापन ने ही 'शाद' को इतनी सुन्दर कविता लिखने की प्रेरणा दी है। विस्थापन की व्यथा झेलते हुए 'शाद' मनसा अपनी मातृभूमि के खिले हुए रूप–यौवन के विषय में बड़े ही नाज़ुक अन्दाज़ से विरह की पीड़ा में मिलन का मधु घोल देते हैं :–

–'वाटिका ने फैलाया तो नहीं मख़्मली दामन
बादाम के शिगूफ़े (कलिका) तो नहीं निकले !
गहनरात्रि में छेड़ा तो नहीं किसी वाद्य–तार को
बादाम के शिगूफ़े तो नहीं निकले !
ढीठ समय ने अस्तव्यस्त कर बिखराया
नीचे गिर पड़े हाथों से, पालेपोसे सपने
परस्पर नहीं रहा संवाद, पथ भटके है इंसान
बादाम के शिगूफ़े तो नहीं निकले।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–94–95

<u>कश्मीरी मूलरूप</u>

'वारि मा वाहरोव मख़्मुॅल दामन
बादामन मा बांमन द्राय
तारि मा ज़ीर लाऽज सोरमऽल शामन
बादामन मा बामन द्राय

बुथ फिर वख़्तन काऽर छलुँ छांगिर
अथुँ मंज़ुँ वाऽस पेय राऽछमुत ख़्वाब
कथ राऽव वथ गई छाऽम्ब इंसानन
बादामन मा बामन द्राय।'

'शाद' के काव्य संग्रह का नाम 'सर्व शिहुल' है और स्मृति बिम्बों पर आधारित अपनी एक रचना (शीर्षक – 'यादप्योम') में 'शाद' इस शीर्षक की सार्थकता सिद्ध करते हुए पुनः मातृ स्मृति से उद्वेलित व्यथा और टीस को मुखर करने की चेष्टा करते हैं। वह यादों की दुनिया में खो जाता है आज यही यादें जानलेवा बनगई हैं पर इन यादों के साथ सम्पूर्ण विस्थापित समाज का कटुमधुर यथार्थ जुड़ा हुआ है। प्रकृति के चिताकर्षक नाना रूप रंग, बुलबुलों के मधुबोल, कोयल की नीड़ निर्माणदक्षता, मेमनों की उछलकूद, बासंती पुष्पों की आवारा महक, प्रातः प्रवाहित समीर, सूर्यास्त की दहन, चिनार बाग का सुख और सुकून, जल प्रपातों के रसीले गान, पीढ़ियों से चला आया बन्धुत्व और न जाने क्या क्या :–

–'शालमार की शीतल सरो छाँह याद आई
शाम शीतल शान्त रात्रि याद आई
ख़ूबानी वृक्ष के शीर्ष दुशाखों के मध्य कोयल का घोंसला
चोंच में लाया शाद्वल तिनका याद आया
शबनम शौक़ से करता है नरगिस का मुख प्रक्षालन
गंध फैलाता सुगन्धित जड़ी का पेड़, याद आया
पीढ़ियों का मधुर बन्धुत्व शाद
चाहत और विश्वास, अनमोल सम्पत्ति, यादआई।'
'सर्व शिहुल'–पृ॰–96–97

कश्मीरी मूल रूप

–'शालुँ मारुक सर्व शिहुल याद प्योम
शाम शीतल शान्त रोतुल याद प्योम
च़ेरुँकुजि तिहरिस दुज़ाऽलिस कुकलि ओल
तोंति मंज़ ओनमुत द्रमन तुल याद प्योम
शोकुँशबनम बुथ छलान यम्बरज़लन
अत्तर छकरान ब्रेडमुशिकुँ कुल याद प्योम

वाँऽसुॅ वादन हुन्द मोदुॅर मिलुॅचार 'शाद'
यच़ तुॅ पछ़ सरमायि मोलुॅल याद प्योम।'

उत्कट देशप्रेम की भावना से प्रेरित 'शाद', 'महजूर', 'आज़ाद', 'नादिम', 'साक़ी', 'सन्तोष', 'सायिल', 'आश', 'जौहर', और 'हलीम' के समान कश्मीर और कश्मीर वासियों की अतुलनीय सांस्कृतिक विरासत की स्मृति दिलाते हुए भू–खण्ड का महिमा गान गाते हैं। नवयुग के प्रारिभ्भक काल खण्ड की यह काव्य प्रवृत्ति (देश प्रम की कविता) आज भी 'शाद' के दिल और दिमाग़ को तरोताजः (प्रफुल्ल) कर रही है। 20वीं शताब्दी में स्वतंत्रता से पूर्व (संघर्ष काल) तथा स्वतंत्रता के बाद इस प्रकार की रचनाएँ व्यापक स्तर पर कश्मीरी भाषा में लिखी गई हैं। आज बेघर होकर जहाँ कवि को घर की याद रुला देती है वहाँ मातृभूमि की पुनीत स्मृति से ही वह विह्वल हो उठता है। आज कश्मीर की कश्मीरियत दाँव पर लगी है। बन्धुत्व, सद्भाव, मेलमिलाप, हिन्दू मुस्लिम एकता, त्याग भावना, समर्पण एवं सहयोग के बदले आज रक्त की पिपासा दिनोदिन बड़ रही है। जाने यह दैत्य कहाँ से घुस आया। इस वन्य पशु ने तो यहाँ की हरी भरी खेती को तो नष्ट विनष्ट कर दिया। यही आज का यथार्थ है और इसी यथार्थ की पृष्ठभूमि पर 'वतन' शीर्षक कविता में कवि मातृभूमि के प्रति अपने 'लोल' भरे उद्गारों को इस प्रकार वाणी प्रदान करते हैं :–

–'सारे विश्व में क्या आली शान (भव्य) है, देश हमारा
नीले आकाश पर मानो सूर्य चमक रहा है, देश हमारा
यहाँ डल–वुलर है, प्रवाहित नद झरनों का संगीत
शृंग प्रज्वलित, मैदान मोतियों के, देश हमारा
दाँव पर लगा दिया जीवन, पर क़ौल निबाहया
नव जीवन के वस्त्राभूषण सजाता, देश हमारा।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–101–102

कश्मीरी मूलरूप

–'कुल आलमस मंज़ क्या छु आऽलीशान वतन सोन
अख़्ताबुॅज़न नीलिस नबस ज़ोतन वतन सोन
यति डल तुॅ वोलर आरुॅ ग्रज़ान आबशारन सोज़
तेंताऽलि ताबान मोख्तकी माऽदान वतन सोन।

ज़ू जान दावस लोग मगर क़ौल पनुन रोछ
नवि ज़िन्दगी हन्दि जामॅु पाऽरावान वतन सोन।'

एक बार फिर कवि–कर्म से हट कर 'शाद' उपदेशक की भूमि का निबाहते हुए बन्धुत्व को पुनः व्यवहार में लाने के हेतु अपने देश वासियों को सचते करते हैं। वह सीमाओं से ऊपर उठकर तथा कश्मीर के गौरवशाली अतीत से प्रेरित हो कर मानवता का पाठ पढ़ाते हुए मानव मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा हेतु यों आह्वान करते हैं :–

–'बहुत भव्य है हमारी प्रतिष्ठा, कश्मीरी !
बाँट लो निर्मल प्रीति परस्पर, कश्मीरी !
कश्मीर हमारा, सातवाँ स्वर्ग कहलाता है
वही धरती जिस ने जन्मा अवतारों को
सूफ़ी, ऋषि, देवी–देवता धर्माचारी
लल्लेश्वरी, शाह हमदान और नूर–उ–द्दीन हमारे।
बन्धुत्व है कमाई उन की, कश्मीरी !
बाँट लो निर्मल प्रीति परस्पर, कश्मीरी !

'सर्व शिहुल'–पृ॰–98–99

<u>*कश्मीरी मूल रूप*</u>

–'थाऽज़ छि वाराह साऽन अज़मत काऽशिरयो
बाऽगराऽविव पोज़ मुहब्बत काऽशिर्यो
सोन कश्मीर यथ वनान खुल्दे बरीय
याऽम ज़न्म पाऽगम्बरन दियुत सोय ज़मीन
सूफ़ि रेश दीवी तॅु दीवता अहलदीन
साऽन लल, सोन शाहमदान नूरद्दीन
बाऽय बन्दुत तिहिंज़ अरज़त काऽशिरयो !
बाऽगराऽविव पोज़ मुहब्बत काऽशिरयो !'

आज 'शाद' साहब के ये बोल ए.के. 47 तथा केलाशनकोप की दनदनाती आवाज़ में घुम हो जाते हैं, महत्त्वहीन होकर खो जाते हैं। रक्त पिपासा के युग में सुधापान की बात छेड़ना कुछ अजीब सा लगता है। वे शायद कुछ क्षणों के लिये भूलजाते हैं कि 'लोहे को लोहा काटता है।' डॉ॰ रामधारी सिंह 'दिनकर', 'कुरुक्षेत्र' में लिखते हैं :–

'व्यक्ति का है धर्म तप, करुणा, क्षमा,

व्यक्ति की शोभा विनय भी, त्याग भी,
किन्तु उठता प्रश्न जब समुदाय का
भूलना पड़ता हमें तप–त्याग को।'[1]

मैं एक और बात की ओर संकेत करना चाहूँगा। शाइर की नज़र बड़ी तेज़ होती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि कश्मीर से कई बार विस्थापित होने के बाद विस्थापित जन पुनः अपने देश में लौट आये हैं। हो सकता है कि इतिहास अपने आप को दोहराये। दैत्य पुनः देवता का रूप ग्रहण करे और वंचित, लुटापिटा कश्मीरी अपने खोये हुए जीवन अधिकारों को प्राप्त करे। यह एक सम्भावना है। उम्मीद एक बहुत बड़ी चीज़ है और उम्मीद के सहारे भी तो जीवन कुछ समय के लिये जिया जा सकता है। कवि को विश्वास है कि:–

'यह कारवाँ है
अग्रगामी
मंज़िल पर आख़िर प्रेम पाये गा मोल।'

'सर्व शिहुल'–पृ०–105

कश्मीरी मूलरूप

'यि छु कारवाँ
ब्रोंह ब्रोंह पकान
मंज़िलस प्यठ लोल आऽख़ुॅर प्रावि मोलॅ'

लेकिन सोचने वाली बात यह है कि जिस शीशे में एक बार बाल पड़गया क्या उस को पुनः पूर्ववत् रूप दिया जा सकता है? यथार्थ बड़ा कड़ुआ/कड़वा है भाई, ज़हर आलूदः और यथार्थ यह है कि :–

–'घर की समस्त सम्पति त्याग दी, चल दिया
पीढ़ियों की कमाई वहीं छोड़ी, चलदिया
हाथ जोड़ कर ठाकुर द्वारे में किया प्रवेश
शिवलिगं पर तनिक दुग्ध–धारा चढ़ायी, चल दिया
अटक गई साँस, गले पर लग गयी साँकल
गली में सर घुमा इक नज़र भर देखकर, चलदिया
खोफ़, दहशात, विवशता, बेराहरवी 'शाद'

1. 'कुरुक्षेत्र'–डॉ० रामधारी सिहं 'दिनकर'–द्वितीय सर्ग–पृ०–26 संवत् 2003 प्रकाशन, प्रकाशक–उदयाचल–पटना–4

जतन से वक्ष में पत्थर टिकाकर (जीकड़ा कर के), चलदिया।'

'सर्व शिहुल'–पृ॰–115–116

कश्मीरी मूल रूप

–'कुल गरुॅच गरवेट मंसाऽवुम तुॅ द्रास
वाँऽसि हिंज़ अरज़त तती त्राऽवुम तुॅ द्रास
गुलि गंडिथ ठोकुर कुठिस चोनुम क़दम
शिव लिंगस दोदुॅ धार खण्ड बाऽवुम तुॅ द्रास
शाह अन्दर आऽन्दरिम हटिस हाँऽकल गयम
कोचि मंज़ुॅ फेकि प्यठि नज़र त्राऽवुम तुॅ द्रास
खोफ़, दहशत, बेबसी माऽति आब शाद
ज़ोरुॅ सीनस काऽन डखस थाऽवुम तुॅ द्रास।'

इस प्रकार श्रृंगारिक कवि श्री प्रेमनाथ 'शाद' ज़िन्दगी के इस बड़े हादिसे का शिकार होकर आज अपने भोगे हुए यथार्थ को भावी पीढ़ी के लिये सुरक्षित रखने के हेतुं इसे कविता के रंगीन ताने बाने में पिरा देता है। यह एक दिन अथवा एक मास अथवा एक वर्ष की बात नहीं। इस हादिसे ने शाइर के अन्तरतम में तलातुम मचादिया है। अपनी महबूबः के फ़िराक़ (वियोग) में आहें भर कर गिला करने वाला शाइर तपतें शोलों की आँच में झुलस कर तथा हुस्न शबाब के स्वप्न लोक से विमुख होकर अपने परिवेश के प्रति सचेत हो उठा। कल्पना के शीश महल से बाहर निकल कर वह ठोस कंकरीली धरती पर डग भरने लगा। आज उस के तलवे छिल गये हैं। बंजर–वीरान–बयाबान में अस्तित्व को बचाये रखने की समस्या आज उसे व्यग्र कर देती है। अतः स्वाभाविक है कि जीवन की दुर्घटनाओं से उत्पन्न भीषण स्थितियों के साथ शाइर अपने मानस का रिश्ता जोड़ ले। कितना वांछित स्वस्थ परिवर्तन है। इतिहास ने करवट बदल ली है और भावानुभूति के क्षेत्र में सरस–मनोरम–सुकोमल कल्पना के बदले कुलिस सदृश कठोर यथार्थ और गहन चिन्तन ने स्थान ग्रहण किया है। विस्थापन आज हमारे जीवन की एक कटु सच्चाई है। इस की चपेट में आकार आज हम, घर से बेघर होकर, अधर में लटक रहे हैं। भूत के सहारे जिया नहीं जा सकता। वर्तमान मातमज़दः (शोकग्रस्त) है और भविष्य अनिश्चित अन्धकारमय। समय के चलते विकास की प्रक्रिया में स्वर्ण रश्मि का विकीर्ण होना स्वाभाविक है। 'शाद' आने वाले कल के प्रति निराश नहीं।

उन का दृष्टिकोण परिपक्व है और चिन्तन स्वस्थ। उन्हें विश्वास है कि इतिहास पुनः करवट बदल लेगा। आख़िर बहुत समय तक बिना करवट बदले वह रह नहीं सकता। कल सूर्योदय अवश्य होगा और तब हमारा आज इतिहास बन जायेगा–20वीं शताब्दी के बुतशिकनी दौर का :–

'आशा शेष है शाद, भूल जा मरण और पुनः जन्म पाना
लाश दफ़ना के भी देखा, देन तुम्हारी जीवित रहती है।'

कश्मीरी मूल रूप

–'आश बाक़ी छि शादुॅ मऽशर मरुन तुॅ ज़न्मस युन
लाश दफ़नाऽविथ ति ड्यूठुम ज़ुवान चोनुई दियुत।'

---- *** ----

सनमुख प्रकाशन
113 ए/4 आनन्द नगर, बोड़ी-जम्मू
पिन : 180002

Printed at :